

भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता ।
NATIONAL LIBRARY, CALCUTTA.

वर्ग संख्या 180. Hc
Class No.

पुस्तक संख्या 82. 3
Book No.

रा० पु०/ N. L. 38.

MGLPC—819—49, 1-12, 14 LNL (PB) —20-5-70 — 150,000.

80. MC. 24. 5

DAYABHAGA

OR

LAW OF INHERITANCE,

BY

JIMUTAVAHANA,

WITH A COMMENTARY BY

Krishna Terkálankára.

PUBLISHED UNDER THE AUTHORITY OF THE GENERAL COMMITTEE

OF

Public Instruction.

PRINTED AT THE EDUCATION PRESS.

1829.

श्रीकृष्णतर्कालङ्कारकृतटीकासहितः

श्रीजीमूतवाहनकृतोदायभागः

श्रीयुक्तकमिष्टिसाहेबानुज्ञया कलिकाता

राजधान्या इडुक्कीमन् मुद्रायन्त्रालये

श्रीलक्ष्मीनारायणशर्म्मा शोधितोमुद्रितश्च

सम्वत् १८८५ अकाब्दे १७५० इंसन् १८२६-

१ ॥ अथ जीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥

| प्रेकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|--|------------|--------------|
| स्त्रीकारशब्दार्थः | २७ | ६ |
| विभागकालः | ३२ | १ |
| जीवन्मृतकपुत्राणां पितृधने स्वत्वाभावः | ३३ | १ |
| उपरमशब्दस्य पातित्याद्युपलक्षणत्वं | ३३ | ४ |
| ज्येष्ठशब्दार्थकथनं | ३६ | १ |
| ज्येष्ठप्रशंसादिकथनं | ३७ | १ |
| पात्र्यकस्य धर्मकारणत्वं | ३७ | ११ |
| पितृधनविभागकालः | ३८ | १ |
| विवाहकालः | ३९ | ३ |
| पित्रनुमत्यादिना ज्येष्ठस्य व्यवहारकर्तृत्वं | ४१ | ५ |
| कालद्वयस्यैव विभागोपयोगिता | ४२ | ८ |
| वृत्तिलोपस्य गर्हितत्वं | ४३ | ४ |
| पैतृकर्णशोधनावश्यकता | ४४ | ५ |
| वृत्तशोधनावशिष्टमातृधनविभागः | ४५ | ४ |
| पितामहधनविभागकालः | ४५ | ६ |
| मात्रभावे पैतृकाधनविभागस्य धर्म्यत्वं | ४८ | ३ |
| पैतामहधने पितापुत्रयोः सदृशस्वत्वं | ५० | १६ |
| पैतामहधने पितृव्यभाट्टपुत्रयो रधिकारेऽविशेषः | ५१ | ३ |

॥ अथ श्रीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टपर्व ॥ ३

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्याङ्कः |
|--|------------|---------------|
| निबन्धपदार्थकथनं | ५२ | ६ |
| स्वोपार्जितधनविभागे पितुरिच्छाया } निरंशकत्वं पैतामहे तु तदभावः } | ५३ | ८ |
| स्वादृतपैतामहधने पितुरिच्छयैव विभागः | ५५ | ८ |
| पितुरनिच्छया पैतामहधनविभागः | ५५ | १२ |
| पैतामहमणिमुक्तादावपि पितुरेव प्रभुत्वं | ५६ | ५ |
| कुटुम्बविरोधिदानादि निषेधः | ५७ | १ |
| कुटुम्बानामवश्यपोष्यता | ५७ | ३ |
| कुटुम्बभरणार्थं सर्वस्यावरादि विक्रयसिद्धिः | ५८ | १ |
| निषिद्धाचरणे अर्धर्माः | ५८ | १ |
| पैतामहधनविभागे पितुर्भागद्वयं | ६२ | ११ |
| विंशोद्धारदिः | ६४ | २ |
| उद्धाररहिते भागकल्पना | ६४ | ५ |
| पुत्रिकायाविंशोद्धारायभावः | ६७ | ५ |
| होलाकाधिकरणन्यायः | ६८ | २ |
| उद्दाराभावकथनं | ७४ | ५ |
| स्वोपार्जितधनविभागः | ८० | ६ |
| शेवजदिरूपस्य पितुर्भागद्वयाभावः | ८१ | ६ |
| शेवजपुत्रविवरणं | ८२ | १ |

अथ जीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टुप्रबन्धः ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|--|------------|--------------|
| पुत्रार्जितवित्तं पितृभागद्वयं | ८३ | ६ |
| स्वार्जितवित्तस्य न्यूनाधिकविभागकत्वं पितुः | ८६ | ४ |
| पितृकृतविभागे विशेषकथनं | ८० | ४ |
| कारणविरहे कस्मैचित्पुत्रायाधि कदानस्य कस्मैवाल्पदानस्य कस्मैचिददानस्य च निषेधः | ८५ | १ |
| पित्रुपरमानन्तरभ्रातृकृतविभागः | ८७ | ४ |
| जीवन्मातापितृकसौदराणां सहवासविधानं | १०० | ४ |
| पित्रोरभावे सौदराणां पार्थक्यं धर्मवृद्धिहेतुः | १०० | ५ |
| मातृरजोनिवृत्तौ पित्रोः सत्त्वेऽपि विभागप्राप्त्यर्थं | १०१ | ६ |
| एकपितृकसमानजातीयसमसङ्ख्याकानां वैमात्रेयाणां मातृप्रधानकोभागः | १०२ | ४ |
| सहवासेषूनां भ्रातॄणां ज्येष्ठस्य योग क्षेमसाधनत्वं अशक्तौ कनिष्ठस्यापि | १०३ | ६ |
| अप्राप्तव्यवहारस्य प्राप्ति तत्सूधनरक्षणप्रकारः | १०४ | २ |
| मृतपितृकपुत्रपौत्रप्रपौ त्राणां समानेविभागः | १०४ | ५ |

॥ अथ जीमूतवाहनहतदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥ १

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|---|------------|--------------|
| सर्वर्णभ्रातृणां विभागप्रकारः | १०८ | १ |
| ज्येष्ठोद्दारादानकारणं | १०८ | १५ |
| पैतृके निष्पृहस्य पुत्रादीनां कालान्तरीय दुरन्ततानिरासार्थं किञ्चिदर्पणं | ११० | १ |
| मात्रे समानांशदानं | ११० | १० |
| पितृकर्तृकविभागे सर्व पत्नीनां समानांशता | ११० | १५ |
| अनूढकन्यानां भागप्राप्तिकथनं | ११२ | १० |
| असंस्कृतस्यावश्यमस्कार्यता | ११५ | २ |
| स्त्रीधननिरूपणं | ११६ | ४ |
| अन्वाधेयधनं | ११६ | ८ |
| षड्विधस्त्रीधनं | ११७ | ८ |
| अध्यग्निधनं | ११८ | १ |
| अधावाहनिकधनं | १३८ | ४ |
| भर्तृदायस्य भर्तृदत्तार्थकत्वं | ११८ | ८ |
| भर्तृदायधनस्य विनियोगादिः | ११८ | ११ |
| भर्तृदायस्य च संख्यानियमः | १२० | ४ |
| प्राधिवेदनिकधनं | १२१ | ८ |

॥ अथ जीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|---|------------|--------------|
| स्त्रीधनस्य षट्संख्यायाश्चविवक्षितत्वं | १२३ | २ |
| सामान्यस्त्रीधनकथनं | १२३ | ४ |
| संक्षेपेण स्त्रीधनकथनं | १२३ | ६ |
| स्त्रीकर्तृकदानविक्रयाद्वाधनं | १२३ | १३ |
| सौदायिकधनं | १२३ | १५ |
| भर्तृदत्तस्यावरं स्त्रीकर्तृकदानाद्यभावः | १२४ | २ |
| पत्यागृहीतस्त्रीधनस्यादानं | १२५ | ५ |
| भर्त्रादीनां स्त्रीधने प्रभुत्वाभावः | १२५ | १० |
| वस्त्रास्त्रीधनग्रहीतृणां भर्त्रादीनां दण्डादिः | १२५ | १२ |
| द्विभार्यस्यभर्तुः स्त्रीधनार्पणं | १२५ | १५ |
| ग्रामाद्युच्छेदे वलात्स्त्रिया ग्राह्यं | १२६ | १७ |
| स्त्रीधनविभागः | १२७ | ४ |
| स्त्रीधनाधिकारिक्रमः | १२८ | १ |
| द्यौतुकधनाधिकारिता | १३२ | १ |
| द्यौतुकपदार्थः | १३२ | २ |
| स्त्रीपुरुषयोरैकशरीरता | १३२ | ३ |
| स्त्रीधनविशेषे अधिकारिविशेषः | १३२ | ७ |
| ग्राह्यादिविवहपञ्चकल } | १३६ | १ |
| आध्यग्निधनाधिकारः } | | |

॥ अथ जीमूतवाहनस्तदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥ ७

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|---|------------|--------------|
| आसुरादिविवाहलक्ष्मीधनाधिकारः | १४० | १२ |
| अप्रजास्त्रीधनाधिकारिक्रमः | १४२ | १ |
| अष्टप्रकारविवाहकथनं | १४४ | ५ |
| कन्याधनाधिकारिक्रमः | १४६ | २ |
| अन्वाधेयधनाधिकारः | १४८ | ६ |
| शुल्कधनलक्षणं | १५० | ३ |
| आसुरादि विवाहलक्षणं | १५० | १४ |
| शुल्कग्रहणनिषेधः | १५२ | ३ |
| अप्रजाया शुल्करूपस्त्रीधने } प्रथमं भर्त्रधिकारः } | १५२ | ११ |
| औरसाद्यभावे स्त्रीधने स्वस्तीयाद्यधिकारः | १५४ | ५ |
| पिण्डदानादिनोपकारतार } तस्येन धनाधिकारिक्रमः } | १५७ | १२ |
| विभागानधिकारिणः | १६१ | १ |
| पुत्रनिन्दाकथनं | १६१ | १० |
| क्षीवलक्षणं | १६३ | ३ |
| मूकशब्दार्थजडशब्दार्थकथनं | १६३ | ६ |
| पङ्कशब्दार्थकथनं | १६३ | ८ |

॥ अर्थ जीमूतदाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्ताङ्कः |
|--|------------|-------------|
| धनानधिकारितासम्पाददोषवतां स्वेकं } न्ययार्थावज्जीवमवशकत्तव्यताविधिः } | १६६ | १ |
| विभाज्याविभाज्यधननिरूपणं | १६७ | १ |
| साधारणधनानुपघातार्जितस्याविभाज्यत्वं | १६७ | ८ |
| साधारणोपघातार्जितस्य विभाज्यत्वं | १६८ | १० |
| शैर्ष्यादिधनातिरिक्तधनविभागः | १६८ | १३ |
| कुटुम्बपोषकस्य विद्याधनभागित्वं | १६८ | १५ |
| विदुषः साधारणानुपघातार्जितांशित्वं | १७१ | १ |
| साधारणार्जितेऽंशतारतम्यहेतुः | १७३ | २ |
| संख्यार्जकस्यापि श्रृंशित्वं | १७४ | १ |
| साधारणधनानुपघातार्जितेऽंशित्वविवेचनं | १७६ | १ |
| अविभक्तार्जितलमात्रनिमि } त्तांशविशेषस्य निषेधः } | १७८ | १ |
| अन्यापहतक्रमागतोद्धृतधने } अविभाज्यधनकथनं } | १७८ | १२ |
| प्रतियहोपात्तधनांशनिषेधः | १८२ | ६ |
| साधारणहेतुसमुत्पन्नधनस्य साधारणं | १८० | २ |
| व्यवहारविशेषस्याप्रामाण्यहेतुः | १८१ | ४ |
| विद्याधननिरूपणं | १८३ | १ |

॥ अथ जीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्यण्टपत्रं ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|--|------------|--------------|
| दानपात्रनिरूपणं | १६६ | ६ |
| दानायोग्यपात्रलक्षणं | १६६ | ८ |
| विद्यापदस्य यौगिकार्थः | १८६ | १३ |
| शौर्यादिधननिरूपणं | १८८ | ५ |
| अङ्गयोजितवस्त्रादीनामविभाज्यता | १८८ | ५ |
| मूर्खेण सह पुस्तकादेरविभाज्यता | २०० | ८ |
| वास्तुप्रभृतीनामविभाज्यता | २०१ | ४ |
| अन्यापद्धतपिचुद्धृतपैतामह } धनं पितुरेवासाधारणं } | २०१ | ७ |
| पूर्व्वनष्टभूमौ भागविशेषः | २०२ | ८ |
| विभागानन्तरजातविभागः | २०३ | ४ |
| विभक्तजनिरूपणं | २०३ | १३ |
| पैतामहधने विभक्तजस्यापि भागविशेषः | २०५ | ३१ |
| विभागानन्तरागतस्य विभागः | २०६ | ४ |
| एकपिटकाणां सवर्णानुलोमपरिणीत } स्त्रीजातानां पुत्राणां विभागः } | २०८ | १ |
| चातुर्वर्ण्यस्त्रीपरिणयनं | २०८ | ४ |
| चातुर्वर्ण्यस्त्रीपरिणयने दोषास्पत्नं | २०८ | ११ |
| द्विजातेः शूद्रापरिणयने दोषवाक्यं | २१० | १ |

१० ॥ अथ जीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टपत्र ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|---|------------|--------------|
| शूद्राभिजायां द्विजातिभार्यात्वञ्च | २१२ | १ |
| अनूढशूद्रायामपत्योत्पादनं दोषाद्यन्त्यत्वं | २१२ | ५ |
| चातुर्वर्ण्यपुत्राणां विभागः | २१२ | ८ |
| गुणवत्तादितारतम्येनाशतारतम्यं | २१३ | ४ |
| विप्रस्य प्रतियहलभ्यभूमौ ब्राह्मणीपुत्रस्यैव स्वं | २१४ | ७ |
| द्विजाति भूमौ शूद्रासुतस्यानधिकारः | २१५ | २ |
| विप्रस्य शूद्रापुत्रमात्रसत्त्वं भागविशेषः | २१८ | ३ |
| विप्रस्य शूद्रासुते निषादत्वं | २१८ | २ |
| अत्रियवैश्ययोः शूद्रासुतमात्रं सत्त्वंऽत्र विशेषव्यवस्था | २१८ | १० |
| शूद्रपुसुतस्य वक्तृनाद्युचितस्य देयत्वं | २२० | १ |
| अपुत्रभ्रातृपरमे सक्तत्पव्यभिगमनं | २२१ | १ |
| पितुरनुमत्या शूद्रासुतस्यांश्च हरत्वं | २२२ | ६ |
| अनुमतिविरहेऽर्द्धभागित्वं | २२२ | ८ |
| दौहित्रान्ताभावे सर्वहरत्वं | २२२ | १२ |
| दौहित्रसत्त्वं तेन सह समाश्रितं | २२२ | १४ |
| पुत्रिकोरस्योर्विभागः | २२३ | १ |
| पुत्रिकाकरणं | २२३ | ६ |

॥ अथ जीमूतवाहनकृतदायभाष्य निर्वण्टपत्रं ॥ ११

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्याङ्कः |
|---|------------|---------------|
| असवर्णैरसपुत्रवदसवर्ण } पुत्रिकौरसयोर्विभागः } | २२५ | ५ |
| बन्ध्यात्वेनावधृतायाः पुत्रि } कायाःपितृधनेऽनधिकारः } | २२५ | ८ |
| औरसेन सह क्षेत्रजादीनां वर्णतार } तस्येन विभागतारतम्यं } | २२७ | १ |
| द्वादशविधपुत्रगणनं | २२६ | ७ |
| अनियोगोत्पन्नक्षेत्रजौरसयोर्विभागः | २२६ | १३ |
| अपुत्रस्य मृतस्य धने विरुद्धवचनानि | २३० | ३ |
| प्रत्यधिकारप्रतिपादकवचनानि | २३१ | १ |
| मृतापुत्रधने प्रथमं भ्रात्रधिकार } बोधक वचनेन विरोधः } | २३६ | १ |
| संस्पृष्टप्रकरणं | २४० | २ |
| पुत्रलक्षणं | २४८ | २ |
| पुत्रजन्मतन्मुखसन्दर्शनादिफलं | २४८ | ६ |
| पौत्रप्रपौत्रयोस्तत्पत्तिजनितफलं | २४८ | १५ |
| उपकाराधिक्येन पुत्रादेर्धनसम्बन्धः | २५० | १० |
| पिण्डदाहत्वादिना धनसम्बन्धः | २५२ | १ |

१२ ॥ अथ जीमूतवाहनजनदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्याङ्कः |
|--|------------|---------------|
| पत्न्या अपि नरकनिस्तारकं } लेन धनाधिकारिता } | २५४ | १ |
| प्राथमिकविवाहितायाज्येष्ठायाः पत्नीत्वं | २५६ | १० |
| विवाहितासु वङ्गीषु वर्णक्रमेण ज्येष्ठ्यं | २५७ | १ |
| सर्वर्णैव भर्तृशुश्रूषा कर्त्तव्या | २५८ | १ |
| सर्वर्णसत्त्वे अन्यथा शुश्रूषायां दोषः | २५८ | ४ |
| सर्वर्णायाश्च भावे शुश्रूषादिकं } मन्यया कारयितव्यं } | २५८ | ६ |
| पत्नीभिन्नस्त्रीणां देवरादिभिर्भर्त्तव्यता | २६० | ३ |
| पत्न्या भर्त्तृधने भोगमात्रं | २६५ | ७ |
| स्वाम्युपकारार्थमर्थदानं | २६८ | ४ |
| वर्त्तनाशक्तौ भर्त्तृधनविक्रयादिः | २६८ | ७ |
| भर्त्तृकुल एव पत्नी कर्त्तव्यदानं | २६८ | १ |
| पतिपक्षसत्त्वे पत्न्याः पितृपक्षस्याप्रभुत्वं | २६८ | १३ |
| भर्त्तृधनात् विवाहोचितं कन्यायै देयं | २७० | १ |
| पत्नीपर्यन्तरहितोपरतस्तु } धनेदुहितुरधिकारः } | २७० | ४ |
| वन्ध्यात्नादिनावधृतायादुहितुर्जाधिकारः | २७१ | ५ |
| आदावदत्ताया सतोदत्ताया अधिकारः | २७१ | ८ |

॥ अथ जीमूतवाङ्मनस्तदाद्यभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥ १३

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|---|------------|--------------|
| नग्निकावस्त्राद्यामेव कन्या दातव्या | २७३ | ४ |
| सवर्णोढायाः सवर्णयादुहितुरेवाधिकारः | २७३ | १० |
| जाताधिकाराद्यादुहितुः पश्चात् बन्ध्या त्वेनावधारणेऽधिकारविवेकः | २७५ | १० |
| भर्तुः पुत्रिकाधनाधिकारे विभेदः | २७६ | १ |
| दुहितुरभावे दौहित्राधिकारः | २८१ | २ |
| दौहित्राभावे पितुरधिकारः | २८५ | ८ |
| वीजयोन्योर्वीजस्योत्कृष्टत्वं | २८७ | १२ |
| क्रमज्ञानक्रमाभिधानयोर्याप्यव्यापकभावः | २८८ | १ |
| पितुरभावे मातुरधिकारः | २८८ | ४ |
| गौरवातिरेकस्य धनाधिकारहेतुत्वे दोषः | २८८ | १५ |
| मातुरभावे भ्रातुरधिकारः | २८९ | १ |
| सोदराभावे वैमात्रेयस्याधिकारः | २९५ | ५ |
| सोदरासोदरयोर्भात्रोरूपकारतारतम्यं | २९६ | ४ |
| असंख्यसोदरसंख्यवैमात्रेय चार्यगणदधिकारः | २९८ | ३ |
| विधिवैख्यं | ३०४ | ४ |
| विधिवैश्वस्यापत्तिः | ३०४ | ७ |
| विधिवैख्यलक्षणं | ३०६ | २ |

१४ ॥ अथ जीमूतवाहनस्तदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्ताङ्कः |
|---|------------|-------------|
| संस्तुताधिकारविवरणं | ३१३ | १ |
| भ्रातुरभावे भ्रातृपुत्रस्याधिकारः | ३२१ | ६ |
| मात्रादिपदानां स्वजनन्यादौ मुख्यत्वं | ३२३ | ७ |
| मातृसपत्न्यादीनां पार्वणं न कर्त्तव्यं | ३२३ | ८ |
| पितृव्यभ्रातृपुत्रयोरधिकारपेक्षापर्य्ये युक्तिः | ३२५ | ९ |
| भ्रातृनप्तुः पितृव्यबाधकत्वं | ३२५ | ८ |
| भ्रातृप्रतिनप्तुः पितृव्यवाध्यत्वं | ३२५ | ८ |
| पितृप्रपौत्राभावे पितृदौहित्राधिकारः | ३२५ | १५ |
| पिण्डप्रत्यासत्तिक्रमेणाधिकारक्रमः | ३२६ | २ |
| सामान्यतः स्त्रीणां न दायहरत्वं | ३२७ | १ |
| मृतभोग्यपिण्डदातुरभावे } मातुलादीनामधिकारः } | ३२७ | ८ |
| धनप्रयोजनकथनं | ३२७ | १३ |
| अयाणामिति वचनस्य निष्कृष्टार्थः | ३३१ | १३ |
| सकुल्याधिकारः | ३३२ | १ |
| सकुल्याभावे समनोदकाधिकारः | ३३२ | ८ |
| समानोदकाभावे आचार्याधिकाराः | ३३३ | १ |
| आचार्याभावे शिष्याधिकारः | ३३३ | २ |
| शिष्याभावे सप्तद्व्यचारिणोऽधिकारः | ३३३ | ३ |

॥ अथ जीमूतवाहनकृतदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥ १५

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्त्यङ्कः |
|--|------------|--------------|
| ब्रह्मचारिणोऽभावे सगोत्राधिकारः | ३३२ | ४ |
| सगोत्राभावे समानप्रवराधिकारः | ३३३ | ५ |
| तदभावे ब्राह्मणाधिकारः | ३३३ | ७ |
| ब्राह्मणातिरिक्तधने राज्ञोऽधिकारः | ३३३ | १३ |
| उपकारतारतम्येनाधिकारक्रमः | ३३४ | ८ |
| पुत्रादीनां त्रयाणां तुल्योऽधिकारः | ३३५ | १ |
| पुत्रादीनां पैतृकधनाधिकारे हेतुः | ३३६ | १ |
| वानप्रस्थादीनां धनाधिकारिक्रमः | ३३८ | ५ |
| नैष्ठिकब्रह्मचारिलक्षणं | ३३८ | ११ |
| उपकुर्वाणब्रह्मचारिधनाधिकारः | ३३८ | १४ |
| संस्तृष्टधनविभागः | ३४२ | १ |
| संस्तृष्टधनविभागे ज्येष्ठांशाभावः | ३४२ | ३ |
| विजातीयकर्तृकसंस्तृष्टधनपूर्वं भागानुसारेण विभाज्यं } | ३४२ | ५ |
| संस्तृष्टलक्षणं | ३४३ | ६ |
| गणितातिरिक्तो संसर्गकृतविशेषाभावः | ३४३ | ८ |
| विभागकाले निरुतस्य विभागः | ३४४ | १ |
| असम्यग्निभक्तस्य पुनर्विभागः | ३४५ | १४ |
| दानार्हधनं | ३४८ | १ |

१६ ॥ अथ जीमूतदाहमकृतदायभागस्य निर्घण्टपत्रं ॥

| प्रकरणं | पृष्ठाङ्कः | पङ्क्ताङ्कः |
|--|------------|-------------|
| सौधसंज्ञा | ३४८ | ४ |
| सौधनिष्पत्तिविवेकः | ३५३ | १ |
| साधारणधनापङ्कवे सौधाभावः | ३५४ | २ |
| विभागसन्देहे निर्णयः | ३५८ | १ |
| विभागसन्देहे ज्ञातिषासि } यस्मै नान्यसाक्षिग्राह्यः } | ३५८ | ५ |
| सौख्यादिकं विनापि विभागानुमापकहेतवः | ३६० | ५ |

—

॥ दायभागः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ मन्वादिवाक्यान्यविमृश्य
येषां यस्मिन्निवादेवज्जधा बुधानाम्तेषाम्प्रबोधाय
स दायभागो निरूपणीयः सुधियः शृणुध्वम् ॥ १ ॥

पादास्वजे हे जगदम्बिकायाः श्रीकृष्णविप्रो हृदये निधाय ।
करोति टीकामिह दायभागयन्यावबोधाय सदेकरम्याम् ॥ १ ॥

यन्यारम्भे विप्रविघाताय देवतानामोच्चारणरूपं मङ्गल
माचरन् शिष्यप्रवृत्त्यर्थमभिधेयप्रयोजनसम्बन्धांश्च प्रदर्शयन्
दायभागमुद्दिशति । मन्वादीति । तथाचोक्तम् ज्ञातार्थं
ज्ञातमम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते । यन्यादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्ध
स्तुप्रयोजनः ॥ अत्राभिधेयो दायभागः प्रयोजनन्दायभाग
निर्णयः सच संशयापनोदनद्वारा दुःखनिवृत्तिहेतुतया
गौणः । सम्बन्धश्च यन्त्रस्य दायभागेन सह ज्ञाप्यज्ञापकभावः
तन्निश्चयेन सह जन्यजनकभाववदति । श्रोकार्थस्तु हे सुधियः
यस्मिन् दायभागे येषाम्बुधानाम्बुजधा विवादः सम्बन्धितत्वा

यममानमरं समुत्पन्नस्य सामुदायिकसत्त्वस्य विनाशेन प्रादे-
 शिकसत्त्वानुकूलव्यापारोविभागः । किम्वा तदानीमुत्पन्नस्यैव
 प्रादेशिकसत्त्वस्य ज्ञापनं विभागः । तथा मृतधनमयमममुच-
 खैव पितुरेव पत्न्याएव वेति बहुप्रकारोविवादः तेषामनुधानास्य
 बोधाय विशेषरूपेण दायभागस्य सम्बन्धिनां मध्ये व्यक्तिविशेष
 निष्ठत्वेन प्राथमिकाधिकारस्य चावधारणाय स दायभागो
 निरूपणीयः निरूपणार्हः । नच नायमुद्देशः किन्तु प्रतिज्ञेति
 वाच्यम् । तथात्वं वक्ष्यमाणप्रतिज्ञान्तरानुपपत्तौः अतएव
 निरूपणीयइत्यनेन निरूपणस्य प्रतिज्ञेति सामुदायिकव्या-
 ख्यानममदित्यवधेयम् । अणुध्वम् अत्र च निरूपणं लक्षणा-
 द्विप्रकारेण ज्ञापनानुकूलवचनम् । तदेव च निरूपणीयविशेष
 णतयोपस्थितं अवणक्रियायां कर्मतयाऽन्वेति योग्यत्वात् । नच
 सुधातोः अवणवाचित्ववत् शाब्दबोधवाचितापीति निरूपणी-
 यस्यापि तद्योग्यत्वमस्ति कथमन्यथा आत्मावारे ओतये
 मन्तव्यइत्यादिसुतावात्मानः ओतय्यतेति वाच्यम् । सर्वत्र
 आवणवाधेनैव सुधातुना शाब्दबोधप्रतिपादनात् तत्र तस्य
 लाक्षणिकत्वात् । ननु सर्वेषामेव विरुद्धवचनानामुध्वचनत्वेन
 प्रमाणत्वात् बहुधैव दायभागोऽस्तीत्यत आह मन्वादीति ।
 अविष्टस्य अनुद्धा तथाच तदवधानां शास्त्राबोधमूलकत्वेन
 न प्रामाण्यमितिभावः । श्रीकराचार्यादियन्वादरपरारहत

॥ दायभागः ॥

२

विवक्तानां पङ्क्तिनां सुव्यक्तनैयायिकास्तत्तत्सूक्ष्मार्थपाहकता
नास्तीति तेषां व्यावृत्तये सुधियइति सम्बोधनम् न्यायगृहीत
शास्त्रार्थपाहकत्वमेव सुधीत्वम् । अत्र मनोर्देवतया तन्नामो
त्कीर्त्तरूपं मङ्गलं बोध्यम् । तथाचोक्तमैटीनसिना एतमेके
वदन्यग्निं मनुमेके प्रजापतिम् । आङ्गरेके परं धर्ममपरे ब्रह्म
शाश्वतमिति । स्वशब्दनिर्द्देशेन च मनोरादिशब्दनिर्द्दिष्टेतर
स्मृतिकारेभ्यः प्राधान्यमावेदितं ग्रन्थकारेण । तेन स्मृत्यन्तरवि
रोधे मनुस्मृतिरेव याज्ञा अतएवोक्तम् मन्वर्थविपरीता या
सा स्मृतिर्न प्रशस्यते । वेदार्थोपनिबन्धुत्वाप्राधान्यं हि मनोः स्मृ
तमिति ॥ ० ॥

अथ दायभागो निरूप्यते ॥ तत्र नारदः ॥ विभा
गोऽर्थस्य पितृस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते ॥ दायभाग इति
प्रोक्तान्तदिवादपदं बुधैः ॥ ० ॥

निरूपणे श्रित्यावरोधाय प्रतिजानीते । अथेति । उद्देशा
नन्तरमित्यर्थः तेन न उद्देशोलक्षणं परीक्षाचेति प्राप्तकाम
विरोधः निरूप्यते लक्षणप्रकारेण ज्ञायते । तत्र दाय
भागलक्षणप्रसङ्गे नारद इत्यस्य एकवचनान्ताव्याहर्त्तव्यया
आहेति क्रिययाऽन्वयः विभागोऽर्थस्येति विभागः स्वतन्त्रनिर्णयानु
कूलो व्यापारः इत्यपि वक्ष्यते । तथाच पितृस्यार्थस्य पुत्रैर्योवि

भागः पुत्रकर्तृकोविभागः स दायभागः स यत्र धने प्रकर्षेण
 कल्प्यते विभागिभिरेकमत्या मध्यस्थाद्यवलम्बनेन वा कल्प्यते
 तद्विवादपदमिति वृधेः प्रोक्तमित्यन्वयः । न चाष्टादशविवाद
 पदगणनायां स्त्रीपुत्र्योर्विभागस्येत्यनेन मनुना विभागस्यैव
 विवादत्वेन गणितत्वात् दायस्य चागणितत्वात् कथं दायस्य
 विवादपदत्वमिति वाच्यम् इदं हि विवादपदञ्च पारि
 भाषिकम् किन्तु दौर्गिकम् दायभागविषयकविवादविषयत्वस्य
 दायोऽप्यवश्यंभावात् दायमविषयीकृत्य दायभागविषयकवि
 वादासंभवादिति नारदवचनानुरोधेन मनुकृतविवादपद
 गणनायां विभागपदस्य कृदभिहितभावतया विभजनीय
 दायपरत्वे त्वनुपपत्तिलेशाभावाच्च । केचित्तु यचेति निमित्त
 सप्तमी यदर्थश्च विवादपदम् । तथाच यदिवादपदनिमि
 त्तमित्यस्यार्थस्य पुत्रेर्विभागोऽक्षपातः प्रकल्प्यते तद्विवादपदं
 दायभागइत्याहुः । यदर्थ्ये यचेति सुपांसुपा साध्वित्यन्ये ।
 परे तु यन्निति पाठः तदर्थश्च विभागक्रियाविशेषणमित्युच्यते ।
 केचन पितृस्यार्थस्येति निर्द्वारणेषु वीर्वर्षयन्ति द्वन्द्वः सामासि
 कस्यचेतिवत् तथाच पितृस्यार्थस्य मध्ये यस्मिन्नर्थे पुत्रे
 विभागः क्रियते स दायभागइति तेषां मते वचनार्थः अत्रापि
 मते धनस्य विवादपदत्वस्योक्तरीत्या बोध्यमिति । यस्तु
 इत्येव पाठइत्यपरे ॥०॥

॥ दायभागः ॥

५

पितृत आगतमित्यम् । तच्च पितृमरणोपजा
तस्त्वमुच्यते । पितृस्येति पुत्रैरिति च द्वयमपि
सम्बन्धिमात्रोपलक्षणम् तेन सम्बन्धमात्रेण सम्बन्धि
धनविभागेऽपि दायभागपदप्रयोगात् अतएव
दायभागं विवादपदमुपक्रम्य नारदोऽपि मात्रादि
धनमप्युपदर्शितवान् ॥ ० ॥

ननु विभागात्प्रागेव पितुर्निधनादिना तदर्थेषु तत्त्वत्वाप
गमात्पितृपदस्य पितुरिदमित्यर्थकल्पनायामयोग्यत्वमती
व्याचष्टे । पितृत इति ननु पितृत आगतमित्यस्य पितृस्त्वना
शानन्तरमपरस्त्ववदित्यर्थकत्वे पितृदत्तादेरप्येवमित्यत्वा
पत्त्या दायत्वापत्तिः । पितृधनविभागस्यैव दायभागत्वेन
पितृधनस्यापि दायत्वस्याभ्युपगमादत आह तच्चेति पितृ
मरणेति पितृमरणादुपजातं स्वं यच्च पितृमरणाधीन
स्त्ववदित्यर्थः । वस्तुतस्तु पितृस्त्वनाशकालेऽपि पितृस्त्वोप
लक्षितबोधकतया पितृपदं योग्यमेव पाकरत्ने घटे श्यामद
त्यादिप्रयोगवत् । अतएव विभजेयुर्धनमितुरित्यादिवचना
न्यपि संगच्छन्ते । मरणपदञ्चात्र इतरस्त्वनाभिमन्वानापूर्वं
कस्त्वनापगमहेतुभूतव्यापारत्वरूपेण पातित्याग्रमाप्तरप्रवेशा
दीनामप्युपलक्षणम् । पितृदत्तादौ तु स्त्वन्न पितृमरणाधी

नम् किन्तु सस्यदानस्वत्वाभिसन्धानपूर्वकत्वागादेव पितुरिति
 नातिप्रसङ्गः । केचित्तु पितृतन्त्रागतमित्यद्वयसम्बन्धसम्बन्धम्
 पितापुत्रभावसम्बन्धाधीनस्त्ववदित्यर्थः तच्चेत्यादि तत्तत्प
 रिचायकमित्याहुः । पौत्रादिभिः क्रियमाणस्य पितामहादि
 धनविभागस्य दायभागत्वापपादनायाह पितृव्यस्येतीति ।
 सम्बन्धिमात्रेति तथाच पितृपदस्य पुत्रपदस्य च सम्बन्धि
 साक्ष्यकतया पितामहादिधनस्यापि सम्बन्ध्युपरमजातस्त्व
 वत्त्वात् तदिभागस्य सम्बन्धिकतत्वाच्च दायभागत्वमनुष्मिति
 भावः । पुत्रैरिति बहुलवृत्तत्वं चाविवक्षितम् तेन द्वयो
 र्विभागे मध्यस्थक्रियमाणे गर्भस्थविभागे च नाव्याप्तिः । ननु
 पितामहादिधनविभागोऽपि दायभागः प्रमाणाभावात् तदा
 कथन्तत्संग्रहाय लक्षणेत्यतस्तत्र प्रमाणमाह सम्बन्धिमात्रे
 णेति शब्दप्रयोगस्य मुनिविरोधात् लक्षणवाप्युपपत्तेराह
 अतएवेति सम्बन्धिमात्रधनविभागस्यापि दायभागत्वादेवे
 त्यर्थः अन्यथा पितृधनविभागस्यैव दायभागत्वे दायभाग
 विवादपदोपक्रमे मात्रादिधनविभागकथनस्याप्रसुताभिधान
 त्वापत्तेरिति भावः ॥ • ॥

तथा मनुरपि । पित्रादिपदमदत्तैव । एषस्त्री
 पंसयोक्तो धर्मो वारतिसंहितः । आपद्यपत्यप्राप्तिश्च

॥ दायभागः ॥

७

दायभागं निबोधत ॥ इत्युपक्रम्य यावत्सम्बन्धि
धनमुक्तवान् । दीयतइति व्युत्पत्त्या दायशब्दो
ददातिप्रयोगश्चगौणः ॥ ० ॥

ननु नारदेन दायभागोपक्रमे पित्रधनविभागएवाक्तो
मात्रादिधनविभागस्य च प्राप्तिक्रमेवाभिधानं अन्यथा स्यात्
विरोधः स्यादिति कथं मात्रादिधनविभागस्य दायभागत्वमि
त्यत आह । तथा मनुरपीति पित्रादिपदमदत्तैवेति
तथाच नारदेन पित्रधनविभागस्य पृथगुक्तत्वात् मात्रादि
धनविभागकथनस्य तत्रासङ्गिकत्वसम्भवेऽपि मनुना दायभागो
पक्रमे पित्रादिपदानन्तर्भावेणैव यावत्सम्बन्धिधनविभाग
स्याक्तेः सम्बन्धिधनविभागस्यैव दायभागत्वमिति भावः ।
नच नारदानुरोधान्मनुस्मृतेः संकीर्त्तोऽस्तु इति वाच्यम् ।
मनोर्बलवत्त्वात् । रतिसंहितः अन्योऽन्यामुरागयुक्तः आपन्न
पत्यप्राप्तिः चैवजादिपुत्रकरणम् । ननु सम्बन्धिधनविभागो
दायभागइत्युक्तञ्च न सम्भवति भावकृदन्तदायशब्दस्य
त्यागमात्रबोधकतया सम्बन्धिधनावोधकत्वादित्यत आह ।
दीयतइति । तथाच दायशब्दस्य दीयते यत्सदायइति कर्म
व्युत्पन्नतया कर्मकृतैव धनबोधइति भावः । ननु तथाप्यनुप
पत्तिः कर्मकृता धातुर्थस्य कर्मणएव बोधनात् धातुर्थस्य

प्रकृते त्यागएव मृतप्रव्रजितादिपुत्रादीनान्तदानीत्यागाभा-
वेन त्यागकर्मत्वेन तद्धनवोधनासम्भवात् अतश्चाह ददाति
प्रयोगश्चेति दाधातुश्चेत्यर्थः चकारः पुनरर्थः गौणइति ।
शक्यस्य सादृश्यात्मकः सम्बन्धोगुणः तदधीना या लक्षणा
सा गौणी तद्योगाद्गौणइत्यर्थः तथाच पूर्वस्वामिस्वत्व
निवृत्तिपरस्वामिस्वत्वोत्पत्तिफलकत्यागत्वेन रूपेण त्याग
शक्यस्य दाधातोः पूर्वस्वामिस्वत्वनिवृत्तिपरस्वामिस्वत्वोत्पत्त्यनु-
कूलव्यापारत्वेन पित्रादिमरणप्रव्रज्यादिमाधारणेन रूपेण
लक्षणा सम्बन्धनिधनाद्यनन्तरं मरणादिरूपतादृशव्यापार
जन्यं यत्पूर्वस्वामिस्वत्वनिवृत्तिपरस्वामिस्वत्वोत्पत्तिरूपफल-
द्वयन्तच्छालित्वरूपं कर्मत्वमचतमेवेति नानुपपत्तिरिति भावः ।
एतेन मरणादेर्ददात्यर्थत्वं तत्र दाधातोर्गौणता । तत्र
स्वत्वस्यानवच्छेदकतया च धनस्यापि न कर्मत्वम् धात्वर्थता
वच्छेदकफलशालिनएव कर्मत्वादिति धात्वर्थजन्यफलभावि-
त्वमात्रेण प्रत्ययस्यापिगौणता चकारः समुच्चये इत्याचार्य
चूडामणिमतं प्रत्युक्तम् । धातोर्निरुक्तरूपेण लक्षणायां स्वत्वस्य
धात्वर्थतावच्छेदकत्वेन तच्छालित्वरूपकर्मत्वस्य निष्प्रत्युह-
त्वादिति ॥ ० ॥

मृतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्ति-
फलसाम्यात् न तु मृतादीनान्तत्र त्यागोऽस्ति तच्च ।

पूर्वस्वामिसम्बन्धाधीनत्वस्याप्यपरमे यत्र स्वत्वं
तत्र निरुद्धोदादशब्दः ॥ ० ॥

गुणमाह । मृतप्रव्रजितादीति । साम्यादिति । शक्यत्वात्
योः करूपत्यागतथाविधव्यापारयोर्मृतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृ-
त्तिपरस्वत्वात्पत्तिरूपोभयफलानुकूलव्यापारत्वरूपमाह स्वा-
दित्यर्थः । सत्त्वनाहेतुं मुख्यार्थवाधमाह । नतु मृतादीनामिति ।
तत्र धने सप्तम्यर्थो विषयत्वम् । तस्य त्यागेऽप्ययः । त्यागो न ममे-
दमितीच्छारूपः । दायशब्दस्य पर्यवसित्त्वर्यमाह । ततश्चेति ।
क्रोतादवतिव्याप्तिवारणायधीनान्तम् । अत्रच पूर्वस्वामीत्य-
विवक्षितम् । सम्बन्धाधीनत्वस्यैव व्यावर्त्तकत्वात् । सम्बन्धस्य
शास्त्रप्राप्तपुत्रत्वाद्यन्यतमः नतु क्रेतृत्वादिः कथस्य सम्बन्धाधी-
नस्वत्वं प्रतिहेतुत्वात् । किन्तु क्रयाधीनस्वत्वं प्रत्येव तस्य क्रयस्य
हेतुत्वादिति । विद्यमानपतिस्वत्वके दान्यत्यसम्बन्धाधीनपत्नी
स्वत्वाश्रयेऽतिव्याप्तिवारणाय । तत्त्वाम्योपरमइति । तथाच
तावदन्यतमसम्बन्धाधीनं सत्यत्पूर्वस्वामिस्वत्वनाशजन्यस्वत्व-
नदति धने निरुद्धोदादशब्दइत्यर्थः ॥ ननु स्वत्वनाशानन्तरं
चेत्स्वत्वात्पत्तिस्तदा तत्क्षणेऽस्वामिकतया निष्पादिवदुदासी-
नस्याप्युपादानात् स्वत्वापत्तिरिति चेन्न । तत्र पुत्रादिसत्ताया
एव विरोधितस्य पुत्राद्यधिकारबोधकशास्त्रसिद्धत्वात् ।

नच पित्रा विज्ञीतेऽपि पुत्रस्वत्वापत्तिः इतरस्वत्वाभिध-
 न्नानापूर्वकपितृस्वत्वापगमहेतुव्यापारजन्यपितृस्वत्वमाश्रयेव
 सम्बन्धाधीनं विजातीयं पुत्रस्वत्वं प्रतिहेतुत्वात् । तादृशस्वत्व-
 माश्रय च स्वत्वेऽधोनिमित्तस्वत्वमाश्रयेन हेतुता नतु
 ऋणेषु गौरवात् । पित्रा पुत्राय दत्तन्तु यद्वनन्तत्र
 पुत्रस्य स्वत्वसम्बन्धाधीनम् । किन्तूदासीनस्यैव दाना-
 धीनम् । अतो न तत्र तादृशपितृस्वत्वमाश्रय व्यभिचारः । अत-
 एव तद्रूपं धनं न दायदति । वस्तु तस्तु पितृस्वत्वमेव पुत्रस्वत्वो-
 त्यसौ हेतुः नचैवमित्यस्वत्वे विद्यमानेऽपि तद्वन्ने पुत्रस्वत्वा-
 पत्तिः । तत्र पितृस्वत्वनाशकस्यापि सहकारित्वात् । स्वत्वनाश-
 कश्च मरणपातित्यादि तेषां स्वत्वनाशकत्वेन स्मृतिप्रतिपादि-
 तानां मरणत्वपातित्यत्वाविशेषरूपेणैवाव्यवहितोत्तरत्वाद्यन्त-
 र्भावेन पुत्रस्वत्वोत्पत्तौ हेतुत्वम् । तेन मरणस्यैव व्यभिचारः ।
 अतएव । विनष्टे वाप्यशरणे इत्यादिवचनैः पितुः पातित्याद्य-
 मन्तरमेव पुत्रस्वत्वमिति प्रतिपादितम् । एतेन पितृस्वत्वनाश-
 कानां मरणादीनां तेन तेन रूपेण हेतुत्वं स्वत्वनाशकत्वेन स्वत्व-
 नाशसामर्थ्येन वा । नाद्यः अनेककार्यकारणभावकल्पने गौर-
 वात् न द्वितीयः । जीवत्यपि पितरि पुत्रस्य स्वत्वं स्यात् । स्वत्वा-
 दृष्टादीनास्तन्नाशकानां सत्त्वात् । द्वितीये चान्यं प्रतिपूर्ववर्त्तित्वं
 गृहीत्वैव यस्य यत्स्वत्वं प्रति पूर्ववर्त्तित्वं गृह्यते इत्युक्त्या न्यथा

शिद्धेः । सामग्रीभेदेन नानाकार्यकरणभावकल्पने गौरवाच्च
तदपेक्षया नात्र हेतुतायाएव लघुतया युक्तत्वादित्यादिकस्य
युक्तम् । प्रव्रज्यामरणपातित्यानां चयाणां कार्यकारण
भाववचकल्पनामपेक्ष्य अन्यदीयोपादानिकस्त्वस्मत्तिस्त्री
वादिभेदकूटविशिष्टपुत्रसत्तायास्तथाविधपौत्रादिसत्तायाश्च
प्रतिबन्धकत्वकल्पनायामेव गौरवात् । नचावश्यकत्वात्
रणादीनामेव हेतुत्वमस्तु नतु पितृस्त्वस्यापीति वाच्यम् ।
तथासति सम्बन्धाधीनस्त्वधारावारणाय तथाविधस्त्वस्य
समानजातीयस्त्वत्वं प्रति प्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवापत्तेः ।
उत्पत्तिमत्वसम्बन्धेन मरणदोर्हेतुतया नधारापत्तिरिति
चेन्न । उत्पत्तीराद्यक्षणसम्बन्धरूपतयाऽननुगमेन कार्यका
रणभावानन्त्यप्रसंगात्सम्बन्धाननुगमस्यादोषत्वादिति सिद्धा
न्तस्य चमन्त्रपाठमात्रत्वात् प्रकारभेदेन च व्यापकताभेदस्या
वश्यकत्वात् । मन्त्रतेतु सम्बन्धिस्त्वस्य हेतुत्वान्तदभावादेव
तद्वारापादानस्यासम्भवदतिसुधीभिर्विभवनीयम् । स्त्वस्य
यथेष्टविनियोगार्हत्वेन शास्त्रबोधितत्वमिति प्राञ्चः । अतिरिक्तः
पदार्थइति शिरोमणिः स्त्वमित्यत्र तन्निरूपकत्वं निरूपकतया
तदेव च द्रव्यगतम् । गुणगतञ्च द्रव्यस्य दानादिश्रुतेः नीलत्वा
दृषमुत्सृजेदित्यादौ लौहित्यादिगुणविशिष्टपारिभाषिक, नील
द्रव्योत्सृगंश्रुतेः । वस्तुतस्तु आत्मसमवेतं स्त्वमित्यतिरिक्तः

वदार्थः विक्रयदानादीनां तन्मात्रकाले क्रयप्रतिपदादीनाञ्च
 तद्देतुले सम्बन्धलाघवात् । तदेव निरूपकतया स्वत्वव्यवहार
 हेतुः अतएव निबन्धादौ भाविन्यपि स्वत्वम् । अन्यथा प्रति
 भाष्यप्रतिवर्ष वा देयत्वेन प्रतिश्रुतधान्यादिरूपस्य तस्य
 भावित्वे तच्च तदुत्पत्त्यनुपपत्तेरिति चूडामणिलीलावती
 रहस्यचिह्नः समीचीनः पन्थाः । अत्र स्वत्वधारावारणाय
 सजातीयस्वत्वमपि स्वत्वं विरोधि । सजातीयेति करग्राह्य ।
 पराजितनृपतिराज्यान्तरवर्त्तितत्तत्पुरुषीयक्रमागतस्यावरा
 दौजयादिना जेतुर्नृपतेः करग्रहणापयोगिस्वत्वेत्यादे तथा
 क्रेतुः प्रतिपदीतृराज्यान्तरवर्त्तिनि तादृशस्यावरादौ चेन्नादेः
 क्रयाद्यधीनस्वत्वेत्यादपि न व्यभिचारइतिसंश्लेषः ॥०॥

ननु किन्दायस्य विभागोविभक्तावयवत्वं यद्वा
 दायेन सह विभगोऽसंयुक्तत्वं । न तावत्पूर्वः दाय
 विनाशपत्तेः ॥ नापि द्वितीयः । संयुक्तेपिनममेदं
 विभक्तं स्वं भ्रातुरिदमिति प्रयोगात् । नच सम्ब
 न्धाविशेषात्सर्वेषां सर्वधनोत्पन्नस्य स्वत्वस्य द्रव्य
 विशेषे व्यवस्थापनं विभागइति वाच्यम् । सम्बन्ध
 न्तरसद्भावप्रतिपत्तस्य सम्बन्धस्यावयवेष्वेव विभाग
 व्यङ्ग्यस्वत्वापादकत्वात् । कृत्स्नपितृधनगतस्वत्वे
 त्यादविनाशकल्पनागौरवात् ॥०॥

॥ दायभागः ॥

१३

दायं निरूप्य भागं निरूपयितुमुच्छति । मन्विति । नारदेन
विभागभागयोरेकत्वप्रतिपादनादाह । विभागइति । दाय
विनाशेति । आरम्भकसंयोगप्रतिषन्धिनावयवद्वयविभागेना
समवायिकारणस्यारम्भकसंयोगस्य नाशात् द्रव्यनाशपक्षेति
त्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । अविभक्ते सखण्डेऽपि तत्सत्त्वात् । अख
ण्डेऽपि विभक्ते तदसत्त्वाच्चेतिद्रष्टव्यम् ॥ संयुक्तेऽपीति । संयुक्तेषु
वस्तुनि इदं वस्तु विभक्ते भातुःस्वं न ममेति प्रयोगादित्यर्थः ।
यद्यपि इदं विभक्तमिति प्रयोगस्यैवापेक्षितत्वेन भातुः स्वं न
ममेति कथनमनुपयोगितयापि वैशेषिकव्यवहारस्य विभागा
धीनत्वात् । तच्च विभक्तलस्यावश्यम्भावावप्रतिपादनार्थं तत्कथन
मिति । सम्बन्धाविशेषादिति । स्वत्वहेतोरुत्पुत्रत्वादिसम्बन्धस्य
सकलपुत्रादिमाधारणादित्यर्थः । सर्वधनोत्पन्नखेति । सम्प
श्रीग्रीहिरितिवत् सामान्याश्रयणादेकवचनम् । द्रव्यविशेषे
एकैकस्त्रिंशे व्यवस्थापनं श्रमान्तरव्यावृत्त्या व्यवस्थापनं ।
एतेन स्वत्वमिति पुरुषस्त्रिभक्तिप्रतिपादितं । तेन साधारणे
सर्वेषां स्वत्वमेकमेवेति भ्रमनिरासः सामुदायिकस्वत्वविनाश
नत्तदंशीयवैशेषिकस्वत्वभूतव्यापारइतिवार्थः तेन समवेतस्व
त्वस्य विद्यमानसत्ताश्रयत्यागरूपव्यावृत्त्यसम्भवेऽपि न क्षतिः ।
सम्बन्धन्तरेति । तुल्याधिकारिसम्बन्धन्तरेत्यर्थः । तेन मृत
पितृकपौत्रादिसङ्गावस्य संग्रहः जीवत्पितृकपौत्रादिसङ्गावस्य

आसंघः सम्बन्धन्तरसङ्गावः प्रतिपक्षः स्वजन्यफलविरोधी
 यस्य तादृशस्य पुत्रत्वादिरूपसम्बन्धस्य अवयवेष्वेव एकैकस्मि
 न्नांशे एव स्वलोत्पादकत्वादित्यर्थः कस्य कुत्रांशे स्वत्वमित्यत्र
 निर्वाचकमाह । विभागव्यञ्ज्येति । तथाच । यदंशे यस्य
 स्वत्वं तदंशे एव तस्य गुटिकापातइतिनियमइत्यभिप्रायः ।
 विभागस्य च व्यञ्जकत्वेन तदभावादेव न विभागात्पूर्वं विज्ञेय
 निष्ठत्वेन तत्पुरुषीयत्वप्रत्ययइतिभावः । ननु सम्बन्धन्तर
 सत्तायाः सामान्यतएव सम्बन्धन्तरस्वत्वविरोधित्वे कुत्रांशे
 कस्यापि स्वत्वलोत्पद्यते विरोधिसत्त्वादिति चेदत्र ब्रूमः । सम्ब
 न्धाधीनस्वत्वप्रागभाववत्त्वप्रत्यासत्त्या सम्बन्धन्तरस्वत्वस्यैव स
 म्बन्धन्तरीयस्य सम्बन्धाधीनस्वत्वमतिविरोधित्वं विभागानन्तरं
 प्रादेशिकस्वत्वस्य भवतामप्यभ्युपेयत्वेन तत्प्रागभावस्य सत्त्वा
 दितिनानुपपत्तिरिति । सम्बन्धन्तरसत्तायाः प्रतिबन्धकत्वे
 प्रमाणमाह । कृत्येति । सकलपित्रादिधनगतसम्बन्धिसमसंख्य
 सामुदायिकस्वत्वानि तेषामुत्पादविनाशाच्च एतावदनन्तपदा
 र्थकल्पनापेक्षया प्रतिबन्धकस्त्वनस्यैव लघुत्वादितिभावः ॥०॥

यथेष्टविनियोगफलाभावेनानुपयोगाच्च ।
 उच्यते । एकदेशोपात्तस्यैव भूदिरण्यादावुत्पन्नस्य
 स्वत्वस्य विनिगमनाप्रमाणाभावेन वैशेषिकव्यव

हारानर्हतया अव्यवस्थितस्य गुटिकापातादिना
व्यञ्जनं विभागः ॥ ० ॥

प्रमाणसत्त्वे गौरवमयकिञ्चित्कारं कथमन्यथाऽदृष्टकल्पनम
तः प्रमाणाभावमाह । वक्ष्येति । यथेष्टविनियोगरूपफलानु
मेयमिहस्वत्वम् । समुदाये कस्यापि सम्बन्धिनस्तदभावे न
कथन्तत्कल्पनमितिभावः । अविनियुक्ते विनष्टे च ममेदं विनष्ट
मिति प्रतीतिबलादुन्नेयमिति । इदमुपलक्षणं । विभागस्य
स्वत्वेतुले स्वत्वनाशकत्वे चप्रमाणाभावात् । एकपुत्रसत्त्वे
व्यभिचाराच्च तत्रावश्यकल्पनीयकारणान्तरादेवान्यत्रापि
निर्वाहे नान्यथासिद्धेऽस्य । एवं विभागस्य स्वत्वनाशकत्वे चौरै
र्विभज्य गृह्येते धने धनिनः स्वत्वनाशापत्तिरित्यपि बोध्यम् ।
उच्यतइति । भृहिरण्यादावुत्पन्नस्य एकदेशोपात्तस्य
तत्तदंशावच्छिन्नस्य विनिगमना इदममुकस्य नान्यस्येत्यवधा
रणरूपा तत्प्रमाणाभावेन वैशेषिकव्यवहारः परस्परनैरपे
क्षेण दानविक्रयादिलक्षणस्तदनर्हतयाव्यवस्थितस्य सतोऽप्य
सत्कल्पस्य गुटिकापातादिना व्यञ्जनं इदममुकस्येत्यवधारणं
विभागंदत्यर्थः । आदिना उभयसम्मतमण्यस्ववचनादिपरिग्रहः
अत्र एकदेशोपात्तत्वादिकं स्वरूपकथनमात्रं नतु विभाग
पदार्थकंटा तत्तद्रूपेण तेषां निवेशः विभागपदार्थस्य पूर्वं

स्वामिस्त्वना भजन्त्यतस्त्वन्धाधीनसमुत्पन्नस्वत्वावधारणमात्र
मिति । अतएव सम्भूय वणिजां समुदायधनविभागो न दाय
भागः तेषामर्जनाधीनस्वत्वस्यैव विभागेनावधारणमिति ।
अस्मिन्नर्थे च विभागपदस्य योगाभावात् कृद्धिरेवेति बोध्यम् ।
नन्वत्र कृद्धिकल्पने गौरवं एवस्मिद्वद्वतविभागेऽप्याप्तिरिति तत्र
पुत्राणां प्रागुत्पन्नस्वत्वाभावे न निरुक्तविभागत्वासम्भवात् ।
न च तत्र विभागपदं स्वत्वावधारणत्वरूपगुणयोगादौणमेवेति
वाच्यं । मुख्यत्वे सम्भवति गौणत्वस्यान्याय्यत्वादत आह ॥ ० ॥

विशेषेण भजनं स्वत्वज्ञापनं वा विभागः । यत्रापि
चैकन्दासीगवादिकं वज्रसाधारणान्तत्रापि तत्त
त्कालविशेषे वचनदोहनफलेन स्वत्वं व्यज्यते ॥ ० ॥

विशेषेणेति । पुरुषविशेषनिरूपिताः विशेषनिष्ठत्वेनेत्यर्थः ।
स्वत्वज्ञापनमिति । स्वत्वज्ञापनानुकूलव्यापरो गुटिकापातादि
रित्यर्थः । दायभागपदे तु व्युपसर्गाभावेऽपि धातूनामनेकार्थ
त्वाद्भजतिरेव केवलोविशिष्टार्थमभिधत्तइति । एवञ्च भजत्यर्थे
कदेशे ज्ञाने व्युपसर्गार्थस्य प्रकारितयाऽन्वयात् विशेषेण
स्वत्वज्ञानानुकूलव्यापारलक्षणाविभागः अस्मिन्नर्थेऽप्येति न
कृद्धिकल्पना मत्रा पिद्वद्वतविभागेऽप्याप्तिरिति । तस्मिन् कल्पे

वक्ष्यवक्षिजान्धनविभागेऽपि विभागलमस्येव । किन्तु स न
 दायभागः तद्वनस्य दायत्वाभावादिति बोध्यम् । ननु यच्चैकैव
 दासीगवादिव्यक्तिर्वा पितृसम्बन्धिनी तस्यां परस्परविरोधेन
 कस्यापि स्वत्वस्यत्वात् तथा च तद्विभागो न दायभागः स्यादत
 आह । यचेति । कालविशेषे व्यवस्थापितद्विचिदिनादौ वक्ष्य
 नन्दोहनं वा फलं यस्य तादृशेन प्रथमं दिनदयं चयादिर्वा
 ज्येष्ठस्य च तदनु तावद्दिनन्तदनुजस्य एवं चापरापरमपरा
 परस्येति मध्यस्यवचनेन स्वत्वं ज्ञाप्यत इत्यर्थः । तथाचैकस्या
 मेव व्यक्तौ कालिकाव्याप्यवृत्तीनि नानास्त्वानि स्वामित्वलक्ष
 णानि सर्वेषु पुत्रेषु प्रागुत्पन्नानि तेषाञ्चैकैकस्थानन्तरभावि
 मध्यस्यवचनेन स्वत्वं व्यज्यते कालविशेषेण तत्तद्व्यक्तिनिष्ठत्वेनाव
 धारणमिति । तत्र तादृशमध्यस्यवचनमेव विभागोऽप्याहृत
 इतिभावः । कालभेदेन स्वत्वक्षेत्रप्रागुत्पन्नप्रमितं स्यात्तदा
 तत्प्रतिपादकमध्यस्यवचनमपि विभागः स्यादतः कालभेदेन
 तथाविधस्वत्वे प्रमाणमाह ॥ ० ॥

तदाह वृद्धस्यतिः । एकां स्त्रीं कारयेत्कर्म यथा
 शेन गृहे गृहे । उत्पन्नं कूपवाप्यभस्वनुसारेण गृह्यते
 युक्त्या विभजनीयन्तदन्यथाऽमर्थकं भवेत् । इदं
 श्लोकार्द्धत्रयं नानास्थानस्थं ननु क्रमिकम् ॥ ० ॥

एका स्त्रीमिति । यथाग्नेन भागिसमसंख्यमासदिवसाद्यं
 ज्ञेयम् । तथाच कालभेदेन कर्ममात्रविधानात्कालभेदेनैव तत्र
 स्वत्वात् स्वत्वस्यागुत्पन्नमिति प्रतिपादितत्वे कस्य एकमेवाव्या
 प्यदृष्टिस्वत्ववस्तुनामाऽनन्तस्वत्वतदुत्पत्तिविनाशकल्पनागोर
 वादिति । अनुसारेण स्वत्वप्रयोजनानुसारेण । नतु परिमाण
 साध्येन । ननु यथैकस्मिन् सुवर्णादावंशभेदेन स्वत्वमभ्युपयते
 तथैकस्यामपि दासीगवादिव्यक्ता अंशभेदेन स्वत्वमभ्युपेयता
 मत आह । युक्त्येति । युक्तिश्च प्रयोजनमापेक्षतया वैशेषिक
 यथेष्टविनियोगएव विभागप्रयोजनन्तश्चावयवविभागस्या
 सम्भवि अवयवानां स्वातन्त्र्येण यथेष्टविनियोगानर्हत्वात् । निर
 र्थक एव विभागः स्वादित्याह । अन्यथेति । इदमुपलक्षणं ।
 अवयविनोमिधित्वापत्तिरथं न कस्यापीति व्यवहारापत्तिश्च
 द्रष्टव्या । तथाचानागत्याकालभेदेनैव स्वत्वमिति सुवर्णादी
 मास्य स्वातन्त्र्येण विनियोगानर्हत्वान्तत्र देशभेदेनैव स्वत्वमिति ।
 ननु तत्कालस्वामिना विक्रीते वस्तुनि कालान्तरस्वामिनामनु
 मतिमन्तरेणापि तत्रक्रेतुः सार्वकालिकस्वत्वापत्तिरिति चेन्न ।
 विक्रेतुर्यादृशं स्वत्वं क्रेतुस्तादृशमेवस्वत्वं कयाज्जायते एवञ्च
 क्रेतुर्विक्रेतुः स्थानीयतयाऽन्यः सह तद्वस्तुनः पर्यायेण विनियोग
 इति । अतएव राज्यान्तराधिकारिणः सकाशान्नृपतिना
 क्रीते राज्यान्तरादौ विक्रेतुः स्वत्वसजातीयं करग्रहणोपयोगि

स्वत्वमेव तस्य जायते न तु दायप्रतिवृत्तौ भूम्यादिवृत्तिस्वत्व
सजातीयस्वत्वं तत्र भूम्यादौ तथाविधस्वत्वसत्त्वे न तद्विरो
धात्तादृशस्त्वान्नरोत्पत्त्यसम्भवात् । समानजातीययो
स्तयोर्विरोधादिति । एतत्सोकार्द्धत्रयस्य संहितायां क्रमेण
दर्शनात् । अमूलत्वशंकामपनेतुमाह । इदमिति । यच्चात्र
स्नानेन दूषणमभिहितं अविभक्तभ्रात्रोरेकेन भ्रात्रा साधार
णाश्वयोरेकतरमादाय धनमर्जितन्तर्जितधनेऽर्जकस्य दा
वशां अपरस्यैकोश इति सर्व्वसम्मतः तत्र यदि गुटिकापा
तादिना पश्चादर्जकेन सोऽश्वो लब्धस्तदा प्रागर्जकस्यैव सोऽ
श्व इति तेनार्जितधने कथं भ्रात्रन्नरस्य भागः । यदि चानर्ज
केन लब्धस्तदा समभागोयुक्तः एकस्य स्वायासेन अपरस्य
श्यामासेन अर्जितत्वादिति तदसत् । प्रादेशिकस्वत्ववादिमतेऽ
विभक्तस्यैव साधारणपदार्थत्वादिति सामान्यस्वत्वानभ्युपगमे
नान्यविधस्यासम्भवात् । अतस्तदुक्तदोषासम्भवादिति सुधीभि
र्भाव्यम् । तत्र हरिनाथमिताक्षरावाचस्पतिमिश्रप्रमृतयः यत्र
यस्य स्वत्वं तत्रैव तस्य गुटिकापात इत्यत्र प्रमाणाभावात् दुर्वि
भक्तत्वेन पुनर्गुटिकापातविषम्बादाच्च । किञ्च । एकश्चेत्तोत्पन्न
शस्यानां यत्राश्रमेण ग्रहणन्तत्र किमवच्छेदेन स्वत्वं जायते
न शस्यावच्छेदेन शस्यानां तदानीमजातत्वात् । किञ्च । एकेन
गवा कृष्टभूम्यादेर्यत्र शस्यविभागस्तत्र किमवच्छेदेन गवि

स्वत्वं श्रद्धादेस्तत्सम्बन्धाच्च । नञ्सम्बन्धोऽप्यवच्छेदकः ।
 किञ्च । सम्बन्धसाम्यात्सर्वेषां सर्वत्र स्वत्वोत्पत्तौ बाधकाभावात्
 प्रागभावादृष्टादीनां विशिष्यहेतुत्वाभावात् । सम्बन्धन्तर
 सत्तायाः प्रतिबन्धकत्वे गौरवात् । नच सामान्यस्वत्वोत्पत्ति
 विनाशकल्पनागौरवं प्रामाणिकत्वात् । एकस्यां दास्यां दशानां
 स्वत्वे चिदिनात्परं स्वत्वनाशतदुत्पत्तिकल्पनायां विपरीतगौ
 रवाच्च विभागस्य स्वत्वनाशकत्वं तद्धेतुत्वञ्च पितृकृतविभागे
 कुप्यमित्याहुः । विभागः प्रागुत्पन्नस्वत्वज्ञापकः स्वत्वजनको
 वेति मतद्वयोपरिमाध्यमिकः शङ्कते ॥ ० ॥

ननु । पितर्युर्द्वौ गते पुत्राविभजेयुर्द्वौ नम्यितु
 रिति वचनात् । पितरुर्द्वौ विभजेयुरित्यन्वयात् ।
 विभागात्पूर्व्वं न तत्र पुत्राणां स्वत्वं नच विभागस्य
 स्वत्वकारणता असम्बन्धिधनेष्यतिप्रसङ्गात् ॥ ० ॥

नन्विति । न पुत्राणामिति । पितरुर्द्वौ नमिति षष्ठ्या बोधित
 पितृस्वत्वस्य प्रतिबन्धकत्वात्तथा च प्रागुत्पन्नस्वत्वज्ञापको
 विभाग इति न सम्भवतीति भावः । द्वितीयमतमाशङ्क्य निषे
 धयति । नचेति । स्वत्वकारणता इत्युपलक्षणं पूर्व्वस्वत्वनाश
 कतेत्यपि बोध्यम् । असम्बन्धीति । उदासीनैरसम्बन्धिधने

गुटिकापातादौ कृते तत्र स्वामिस्वत्वनाशोदासीनस्वत्वयोः
प्रसंगादित्यर्थः । नच सम्बन्धिधनस्वत्वस्यैवास्वकारण
मिति वाच्यं सुखस्य जीवतः पितुर्धने पुत्रैर्वलादिभागे तदा
पत्तेः विभागात्पूर्वस्युच्चायां स्वत्वव्यवस्थापनेनैव स्वमतसिद्ध
विभागस्य निष्प्रत्यूहतेति तत् व्यवस्थापयति ॥ ० ॥

उच्यते । पित्रादिनिधनानन्तरमेवास्मदीयन्ध
नमिति प्रयोगात् । एकपुत्रे चविभागं विनैव स्वत्व
स्वीकाराच्च । सम्बन्धिनिधनमेव स्वत्वकारणमतो
नातिप्रसंगः । नन्वर्जयितव्यापारोऽर्जनम् । अर्ज
नाधीनस्वामिभावश्चार्जयिता तेन पुत्रव्यापारोजन्मै
वार्जनं युक्तम् । अतोजीवत्येव पितरि पुत्राणं तत्र
स्वत्वन्नतु तन्निधनात् । अतएवोक्तम् । क्वचिज्ज
न्मैव यथा पित्ये धने । नैतन्मन्वा दिविरोधात् ॥ ० ॥

उच्यतेइति । पितृनिधनानन्तरमित्यत्र निधनपदं इतर
स्वत्वाभिसन्धानापूर्वकस्वस्वत्वापगमहेतुभूतव्यापारोपलक्षकं
एवमुत्तरं चापि बोध्यम् । ननु विभागएव सम्बन्धिनाक्रियमाणः
स्वत्वहेतुरतोनासम्बन्धिधनेऽतिप्रसङ्गः तस्य च सम्बन्धिनिधन
पातित्याश्रयान्तरप्रवेष्टाद्यन्यतमकालस्य सहकारित्वम् ।

न बलादिभागे तदापत्तिरतोविभागात्पूर्वमस्यदीयमिति
 प्रयोगोगौण एवेत्यत आह । एकपुत्रे चेति । तथाच व्यभि-
 चारात् विभागस्य सामान्यतः कारणत्वबाधेन तत्र कृत-
 कारणादेव सम्बन्धिनिधनात् वज्रपुत्रस्य लेपि तत्सम्भवे
 तदन्यथासिद्धेऽस्य सम्बन्धे सम्बन्धिनिधनमेवं स्वत्वहेतुरित्युत्पन्न-
 स्वत्वघटितविभागलक्षणस्य नानुपपत्तिर्नवा पूर्वमस्यदीय-
 मिति प्रयोगोगौणः किन्तु मुख्य एवेति । पितुर्धनमिति तु भूत-
 पूर्वस्वत्वात् उपपाद्यमिति भावः । अर्जयितव्यापारदिति ।
 इदञ्च नार्जनार्जयिचोर्लक्षणपरं । अन्योन्याश्रयप्रसङ्गात् ।
 किन्त्वर्जनस्वामित्वयोः सामानाधिकरण्येन कार्यकारणभाव-
 परम् । अर्जनलक्षणं स्वामित्वहेतुभूतव्यापारत्वमेव तथाच
 व्यधिकरणस्य पितृनिधानादेर्नपुत्रस्वत्वात्पत्तौ हेतुत्वमिति
 शक्यार्थः तेन व्यधिकरणस्य हेतुत्वासम्भवेन । जन्मैवेति । नच
 पुत्रोत्पत्त्यनन्तरं पित्रर्जितद्रव्ये पुत्रस्त्वानुपपत्तिराद्यलक्षण-
 सम्बन्धरूपपुत्रजन्मनोऽतीतत्वादिति वाच्यम् । जन्मपदेनाद्य-
 लक्षणसम्बन्धध्वंसस्यैव लक्षणयोक्तत्वात् । ननु स्वत्वं यथेष्टविनि-
 योज्यत्वेन शास्त्रगन्तव्यलक्षणं नच पितुर्भावि द्रव्ये पुत्रस्याक्षतं
 पितुर्द्रव्यं पुत्रेण यथेष्टविनियोज्यमिति शास्त्रेण पितृद्रव्यत्वावच्छे-
 देनैव पुत्रविनियोज्यत्वस्य बाधनात् सूडामणिमतमादरणीय-
 मिति चेन्न । तथास्मति जन्मप्रागपि स्वत्वापत्त्या जन्मैवार्जनमित्य

नुपपत्तेः । किञ्च स्वं विनियुञ्जीतेति श्रुतिवाक्यादन्वयबोधे
 षति यथेष्टविनियोज्यत्वेन शास्त्रगम्यत्वरूपस्वत्वज्ञाने स्वपदान्त
 दुपस्थितिः तस्याञ्च सत्यान्तदन्वयबोधइत्यन्योन्याश्रयात् ।
 तस्मात्स्वत्वमप्यर्थान्तरमेव स्वत्वस्याखण्डोपाधिविशेषइति ।
 युक्तमिति । अर्जनस्वामित्वयोः सामानाधिकरणानुरोधादिति
 भावः । जीवत्येवेति । पातित्यादिकं विनेति शेषः । जन्मैवेति ।
 अर्जनमिति शेषः । दूषयति । नैतदिति ॥ ० ॥

यथा मनुः । ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः
 समम् । भजेरन् पितृकं शिष्यमनीशास्ते हि जीव
 ताः ॥ जीवतोरपि पुत्राणां कुलो न विभागइत्याशं
 कायामिदमुत्तरम् । तदानीमस्वामित्वादिति ।
 नच भार्या पुत्रश्चेत्यादिवदस्वातन्त्र्याभिप्रायमिति
 वाच्यम् । तदानीं स्वत्वे प्रमाणाभावात् । भार्यादिपु
 तु । यत्ते समधिगच्छन्ति अर्जयन्तीति स्वत्वे सिद्धे
 युक्तमस्वातन्त्र्यवर्णनम् । किञ्च । स्वीपात्तेपि तेषां
 मस्वामित्वे स्वधनसाध्यवैदिककर्माच्छेदाच्छ्रुतिवि
 रोधः स्यात् । देवलश्च । पितृधने ऽस्वाम्यमेव स्पष्टयति
 यथा । पितर्युपरते पुत्राविभजेयुर्धनं पितुः । अस्वा
 म्यं हि भवेदेपां निर्दोषे पितरि स्थिते ॥ ० ॥

ऊर्द्धं महेपरमानन्तरम् । भार्यापुत्रस्य दायस्य च यथा
 धनाः सृताः । यत्ने समधिगच्छन्ति यस्मै ते तस्य तद्वन्मित्यत्र
 यथाऽधना इत्यस्यास्वतन्त्रा इत्यर्थः । तथाऽनीशा इत्यत्राप्य
 स्वतन्त्रा इत्यर्थो वाच्य इत्याशङ्कते । न चेति । तदानीं पित्र
 जीवनकाले । भार्यादिभ्यः । अर्जयन्तीत्यनेन स्वत्वहेतुरूपा
 र्जनबोधनात्स्वत्वप्राप्तौ तदन्यथाऽनुपपत्त्या युक्तमस्वातन्त्र्यवर्णन
 मित्यर्थः । नन्वधिगमो नोपार्जनं किन्तु पादानमेव वाच्यमत
 आह । किञ्चेति । नच पत्यादिभिर्दत्तैः कर्मोपपत्तिरिति
 वाच्यं तर्हि पत्यादिदत्तत्याग एव भार्यादीनां स्वत्वमुत्पादयेत् ।
 तथा चान्यतो लब्धे यद्यालाभानन्तरमेव पत्यादेः स्वत्वन्तथाप
 त्यादितो लब्धेऽपि स्यादिति कथं तेन कर्मोपपत्तिरिति तद्दोष
 तादवस्थात् । ननु अनीशा इत्यस्यास्वतन्त्रा इत्येवार्थः अस्मा
 द्भ्यार्थकत्वे जीवितोरिति दिवचनबललभ्यस्य पितरि जीवति
 मातरि जीवन्त्यां अनीशा इत्यस्य पितृपरमानन्तरं मातृस्वत्व
 विषये बाधापत्तेस्तदानीं पुत्राणां स्वामित्वे सर्वेषामविवादाद
 त आह । देवत्वञ्चेति तथाचात्र मातुरश्रुतत्वात् अस्माभ्यपदं
 मुख्यमेव नत्वस्वातन्त्र्ये लाक्षणिकमिति भावः । नन्वत्र नञर्थोऽ
 प्राशस्यमेव अप्राशस्यं विरोधश्चेत्यादिना तस्यापि नञर्थतयो
 क्तः स्वाभ्यस्याप्राशस्यश्च पितुरनुमतिनैरपेक्षेणैव विनियोगाप्र
 योजकत्वम् । अभावार्थकत्वे भवत्यर्थोत्पत्त्यन्वयानुपपत्तेर
 त आह ॥ ० ॥

किञ्च । जीवत्यपि पितरि पितृधने पुत्राणां
स्वामित्वे पितुरविच्छेद्यापि विभागः स्याज्जन्मनैव
स्वत्वमित्यत्र प्रमाणाभावाच्च । अर्जनरूपतया
जन्मनः स्मृतावनधिगमात् क्वचिज्जनैवेति च जन्म
निबन्धनत्वात् पितापुत्रसम्बन्धस्य पितृमरणस्य
च स्वत्वकारणत्वात् परम्परया वर्णनम् । अन्यथा
पारेणान्यस्य स्वत्वमविरुद्धं । शास्त्रमूलत्वादस्य ।
दृष्टंच लोकेपि दाने हि चेतनोद्देशविशिष्टत्यागा
देय दातृव्यापारात्सम्यदानस्य द्रव्ये स्वामित्वं ॥ ० ॥

किञ्चेति । ननु पितुरनुमत्या दायभागः जीवति पितरि च
कथं दायभागोऽनुमतिरित्यादिवचनात् । विभागेऽप्यस्मात्
स्वमविशिष्टमत आह । जन्मनैवेति । तथा चानुपपत्त्यभावात्
अस्वान्वमित्यत्र नलक्षणा भवति आप्तममार्थकोलाच्छणिक
इति भावः । स्मृतिरेव प्रमाणमिति निराकरोति । अर्जनरूप
तयेति । ततश्च उत्पत्त्यैवार्थं स्वामित्वाह्नभते इत्याचार्याम
न्यन्ते इतिमिताचराधृतवचनं अमूलं समूलत्वे वा यस्मिन् गर्भं
स्येपिचादिर्भूतः तत्परमन्यथा पुत्रवतः पितुः स्वधनेऽप्यस्मा
तस्यापत्तेरत्याशयः । वस्तुतस्तूत्पत्त्यैवेति तृतीया प्रयोजक
तायां ननु जनकतायां तथाचोत्पत्तिसम्बन्धस्य सम्बन्धान्तरा

दधिकतया तत्प्रयुक्तो जनकधने तत्स्वत्वापगमानन्तरमुक्तोऽधि-
कारीत्यत्र तात्पर्यमिति बोध्यम् । कश्चिदिति यन्मानरे जन्मौ
वेति लौकिकस्यामाधिकवाक्यमित्यर्थः । जन्मनिबन्धनेति ।
तत्पितृमरणस्य कारणत्वे तज्जन्मनोऽपि तत्र प्रयोजकत्वादि-
त्यर्थः । ननु फलाधिकरणप्रत्यासन्नस्यैव फलजनकता तत्र च
साक्षात्प्रत्यासत्तिसम्भवं परम्पराप्रत्यासत्तिर्नाश्रियते गौरवात्
तथाच पितृमरणादेर्दधिकरणतया जनकत्वाभावात् । साक्षा-
त्प्रत्यासत्तिशालिनो जन्मन एव कारणत्वं स्यादत आह । अन्य-
व्यापारेति । शास्त्रमृतेति तथाच शास्त्रवलेनैव अधिकरण-
स्यापि परम्परया कारणत्वमिति भावः । ननु शास्त्रमनीशास्ते
हीत्यादिकन्तश्चास्मात्तद्व्यपरमित्युक्तमेवेत्यत आह । दृष्टञ्चेति ।
त्यागमात्रात् वृषोत्सर्गादिरूपात्त्वामित्वाजननादाह । चेत्
नादं चेति उद्देशः स्यामित्ये न विषयता साच त्यागात्मिकाया
दृष्ट्या एवेत्यत आह । विशिष्टत्यागादिति ॥ ननु त्यागात्कं-
वलं स्वत्वनाशः सम्यदानस्वत्वन्तु ममेदमिति भाविस्त्वभावगा-
हितत्वीकारादेवेति मतं निराकराति ॥ ० ॥

नच स्वीकरणात्स्वत्वं स्वीकर्तरेव दातृत्वापत्तेः
परस्वत्वापत्तिफलेन हि दानरूपता तच्च फलं सम्य-
दानाधीनम् । यथा देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागं कुर्व

अपि यजमानो न होता । किन्तु । तस्यैव त्यागस्य
होमाभिधाननिमित्तं प्रक्षेपं कुर्वन् ऋत्विगेव होते
त्युच्यते तद्वदनापि स्यात् । किञ्च । मनसा पात्र
मुद्दिश्येत्यादिशास्त्रे स्वीकारात्प्रागेव दानपदन्दृ
ष्टम् । ननु ग्रहणं स्वीकारः । अभूततद्भावेऽपि प्रयो
गात् । अस्वं स्वं कुर्वन् व्यापारः स्वीकारो भवति ।
कथन्तत्प्रागेव स्त्वम् । उच्यते । उत्पन्नमपि स्त्वम्
सम्प्रदानव्यापारेण ममेदमिति ज्ञानेन यथेष्टव्यव
हारार्हं क्रियत इति स्वीकारशब्दार्थः ॥ ० ॥

न चेति । स्वीकर्तुरेवेत्येवकारेण त्यक्तुर्व्यवच्छेदः इदमु
पपादयति । परस्वत्वापत्तिफलं न हीति । अत्रायमाशयः ।
धात्वर्थतावच्छेदकफलानुकूलव्यापारवत एव त्वजन्ततद्भातु
व्यपदेश्यत्वं । यथा धात्वर्थतावच्छेदक उत्तरदेशसंयोगानुकू
लव्यापारवति चेन्न गन्तेति व्यवहारः स्वीकारस्य स्त्वहेतु
त्वं धात्वर्थतावच्छेदकपरस्त्वानुकूलस्वीकाररूपव्यापारवतः
स्वीकर्तुरेव दातृपदव्यपदेशत्वापत्तिरिति पूर्वस्त्वध्वंसरूप
फलस्य न तद्व्यपदेशनियामकता तथात्वे उपेक्षितादावपि दातृ
पदव्यपदेशापत्तिरिति । केचित्तु स्वीकारस्य स्त्वहेतुत्वे परस्व
त्वफलोपहितत्यागात्मकदाने सर्वत्रैकस्यापि कहेत्यासन्न

वात् । एकाग्रमादायैव दातृत्वव्यवहारे कर्त्तव्ये प्रधानीभूत
 फलांशानुकूलव्यापारवत्येव दातृव्यवहारः स्यादिति व्याचक्रुः
 दृष्टान्तेनेदं द्रढयति । यथाहीति । होमाभिधाननिमित्तमिति
 विशिष्टदेशावच्छिन्नप्रक्षेपोपहितत्यागस्य होमत्वात् । प्रक्षेपस्य
 तदभिधाननिमित्तत्वमित्यर्थः । तेन ऊधात्वर्थतावच्छेदक
 प्रक्षेपानुकूलव्यापारवति चत्विजि होता इत्यादिव्यपदेशो यथा
 तथेत्यर्थः । त्यागस्य स्वत्वहेतुत्वे स्फुटमेवशास्त्रसमाख्ययति ।
 किञ्चेति । आदिना भूमौतोयं विनिःक्षिपेदित्युत्तरप्रतीकपरि
 ग्रहः । शास्त्रेशास्त्रबोधितत्यागे । दानपदं दृष्टमिति । विद्य
 तेमागरस्यान्तोदानस्यान्तो न विद्यते इति तद्वचनस्योत्तरार्द्धे
 दानपदस्य युक्तमित्यर्थः तथाच निरन्तरयोरेव स्वस्वत्वध्वंस
 परस्वत्वात्पत्तिफलयोर्द्वादतिधात्वर्थतावच्छेदकत्वात् दानस्य
 परस्वत्वहेतुता शास्त्रसिद्धैवेतिभावः । स्वीकारात्प्रागेव स्वत्वे
 ग्रहणस्य स्वीकारपदार्थत्वासम्भवमाशङ्कते । नन्विति । स्वीकार
 शब्दार्थ इति । तथाच स्वपदस्य यथेष्टविनियोगार्हत्वविशिष्टे
 लक्षणेति भावः । ननु याजनाध्यापनप्रतिग्रहैर्वाङ्मणोधन
 मर्जयेदित्यत्र राजसूयेन यजेत इत्यादिवत् । याजनाध्या
 पनेन धनमर्जयेदित्यन्वयात् प्रतिग्रहस्यार्जनरूपता सिद्धा ।
 प्रतिग्रहस्य स्वत्वाहेतुत्वे तद्विरुद्धं स्वत्वहेतुव्यापारस्यैवार्जन
 लादत आह ॥ ० ॥

याजनाध्यापनसाहचर्याच्च प्रतिग्रहस्य स्वत्व
मजनयतोपि अर्जनरूपता न विरुद्धा याजनादौ
दक्षिणादानादेव स्वत्वात्पितृनिधनकालीनं वा
जीवनमेव पुत्रस्यार्जनं भविष्यति ॥०॥

याजनेति । अर्जनरूपताऽर्जनव्यपदेशः अविरोधमुपपादयति ।
याजनादाविति । तथाच याजनादीनां स्वत्वाहेतुत्वेन तदन्व
यानुरोधवत् । अर्जयेदित्यत्रार्जनत्वं । किन्तु स्वत्वप्रयोजकत्व
मेव तच्च प्रतिग्रहेऽप्युक्ततन्द्त्वे सत्ययस्यतिगृह्णातीत्यवधारण
एव तदुद्देशेन दत्तेयागात् तत्स्वत्वादयाप्रतिग्रहवैमुख्यज्ञा
ने तद्व्यतिरेकाच्चेति भावः । ननु धात्वर्थगमनानुकूलकृतिम
त्येव गन्वादिव्यपदेशोलाघवात् । ननु धात्वर्थतावच्छब्दकफला
नुकूलव्यापारवति गौरवात् । तथाच कथं प्रतिग्रहीतुर्दातृत्वा
पत्तिस्तस्यदानानुकूलकृत्यभावात् । अतएव ऋत्विगेव हीते
त्युच्यते तस्यैव हवनानुकूलकृतिमत्त्वात् न यजमानस्य भव
न्मते स्वीकारे स्वपदस्य यथेष्टविनियोगार्हत्वविशिष्टे लक्षणा
वच्च मन्त्रतेपि शास्त्रीयदानपदस्य स्वत्वाभिसन्धानपूर्वकत्यागे
लक्षणा । किञ्च याजनाध्यापनयोः पूर्ववर्त्तितया प्रयोजक
त्वात् तत्समभिध्याहृतप्रतिग्रहस्यापि तथात्वं युक्तं ननु प्रथो
नकञ्चानविषयतया । अपिच त्यागमरणाद्योः स्वत्वहेतवे

तदानीं मृतादीनामर्जयितृप्रतीतिव्यवहारापत्तिरतः समाना
धिकरणव्यापारएव स्वत्वहेतुर्लाघवात् तत्कथं पितृनिधनादेः
पुत्रस्वत्वहेतुत्वमत आह । पितृनिधनकालीनत्वेति । पुत्रजी
वनमेव स्वत्वहेतुस्तत्र पितृनिधनकालः संहकारीत्यर्थः एवं
सत्यस्यास्यं हीत्यादिकमपि मगच्छते जन्मनोहेतुत्वे तत्र लक्ष
णास्मादिति भावः । विनिगमकान्तरमाह ॥०॥

किञ्च । भ्रात्रादिधने तन्मरणान्तन्मरणकालीन
जीवनादा भ्रात्रन्तरादेः स्वत्वमकामेनापि वाच्यम् ।
अत ऊर्ध्वं पितुष्वेत्यादितत्कालीनस्वत्वज्ञापनार्थन्त
दानीमेव चेच्छाप्राप्तं विभागमनुवदति प्राप्तत्वादि
धानानुपपत्तेः । नच नियमः सम्भवति ॥

एवं स हवसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्ययेति मनु
विरोधात् । दृष्टार्थत्वाच्च विभागस्य न तन्नियमः
कालनियमोवा सम्भवति ॥०॥

किञ्चेति । मरणस्य हेतुत्वे पूर्वाक्तदोषापत्तिरतस्तन्मरण
कालीनजीवनाच्चेति । अकामेनापीति । अन्यथा मातृपर्यन्त
रहितभ्रातृधने तस्मिन्निर्दोषे जीवत्यपि भ्रात्रन्तरस्याद्यक्ष
सम्बन्धसंस्वरूपजन्मतः स्वत्वापत्तेस्तदनिच्छयाऽपि विभाग

प्रसंगात् । भ्रातृस्त्वस्य च भ्रात्रन्तरस्वत्वाविरोधात्सामुदायि
कस्त्वत्वे तथादर्शनात् । एवं भ्रातुर्दारपरिग्रहे तदनन्तरं
भ्रातुःस्त्वनाशस्तद्धने तद्धारमरणे पुनः स्वलोत्पत्तिरिति
कल्पना गौरवाच्च । अतोऽत्र कृत्रकारणादेव जीवनादन्यथापि
निर्वाहे किमुत्रत्यत्वमिति तज्जन्मनोहेतुत्वकल्पनयेति भावः ।
अत्र मनोःस्वरसन्दर्शयति । अतइति । यतो न जीवति स्वत्व
मतइत्यर्थः । तत्कालीनं पितृमरणकालीनं यथाक्तन्यायात् ।
उपरमएव स्वत्वन्ततद्वच्छयाविभागोऽपि तदा प्राप्तएवेति ।
विभागाविध्यनुपपत्तेराह । तत्कालीनेति । पितुरूपरमकाल
मित्यर्थः । अनुवदतीति । तथाच तात्कालिकस्त्वज्ञापनार्थं
विभागानुवादइति नतदिधिरिति भावः । विधित्वे सम्भवत्यनु
वादत्वमन्याय्यमतानियमविधिरेव भविष्यतीत्याशङ्क्य निषेध
यति । नचंति नियमः पितुरुर्द्धं विभजेदित्येवं रूपः । दृष्टार्थं
त्वाददृष्टाजनकत्वादिति यावत् । तथा चादृष्टाजनककर्मण्येव
करणाकरणयोः शुभाशुभादृष्टमात्रार्थानियमः यथा जला
शयोत्सर्गादा गौरवतारणानुमन्त्रणयोर्यजमानकर्तृकमन्त्र
पाठनियमः करणे शुभादृष्टार्थपोषवर्गभरणादिनियमश्च
अकरणादशुभादृष्टार्थमिति करणाकरणाभ्यान्तज्जनकस्त्वयं
विभागोवचनश्रुतेनापि निर्णेतुमशक्यइतिभावः । कालनि
यमोयदि विभजेत्तदा पितुरुर्द्धमेव विभजेदित्येवं रूपः । अथा
स्तददृष्टार्थएव कालनियमइत्यतआह ॥ ० ॥

किञ्च । पितर्युपरतइत्यनन्तरकालएव विभागः
 स्यात् । नतु परस्तादपि । जातेष्टिवज्जातप्राणवियो
 गापत्तिसमानस्यात्र विरोधस्याभावात् पितृपरमा
 नन्तरस्य च यावज्जीवपर्यन्तस्य स्वेच्छातएव प्राप्त
 त्वात् । अतो जीवति पितरि सत्यपि पुत्राणां स्वाम्ये
 विभागनिषेधार्थं मनुवचनं वाच्यम् । तच्चान्या
 यम् । अस्वार्थपरत्वापत्तेः ॥ ० ॥

किञ्चेत । पितरुपरमानन्तरमित्यत्रानन्तरमव्यवहिता
 नन्तरमात्रं वा आद्येऽनन्तरकालएवेति । पितृपरमाव्यवहिता
 नन्तरकालएवेत्यर्थः । विशेषणस्येतरव्यावृत्तिफलत्वादाह ।
 नत्विति । ननु यथावैश्वानरं द्वादशकपालञ्चद्विर्विपेत् । पुत्रे
 जाते इत्यत्र जातेष्ट्यव्यवहितोत्तरकालस्य प्राप्तावपि बाध
 कबलादशौचान्ते क्रियते तथाचापि समयान्तरे विभागोभ
 विध्यतीत्यत आह । जातेष्टीति जातप्राणेति । तथाच नाडीर्च्छे
 दानन्तरमशौचात्पादात् । जातकर्मावदच्छिन्ननाडीदशाया
 मेव इष्टिर्वात्यास्तन्यपानञ्च कृन्तनाभिरिति ब्रूयात् स्तनन्तु
 प्रतिधत्ते इति गोभिलेन नाडीर्च्छेदात्परमभिहितं तावत्का
 लञ्च स्तन्यापानेऽनुष्ककण्ठतया बालवियोगापत्तिरिति तदि
 रोधात् तत्र तथादहतु न तदिरोधइत्यर्थः । द्वितीये ।

॥ दायभागः ॥

५५

पितुर्हपरमानन्तर्यस्येति । स्वेच्छातएवेति । तथाच पित्रुपरमा
त्यूर्ध्वं पुत्राणामस्वाम्यात् विभागाप्रसक्तेर्विभागे तदनन्तर
कालस्यावश्यकतया विधिं विनापि सिद्धत्वे नाव्यावर्त्तकतया
तथा नियमोव्यर्थेति भावः अदृष्टार्थकत्वकल्पनाचादृष्टादि
कल्पनागौरवपराहतैवेति हृदयम् । ननु तथापि परिसङ्ख्या
विधिरास्ती जीवति पितरि पुत्रान् विभजेरन्निति नानुवाद
इत्याशङ्क्य निराकरोति । अतइति । भवन्मते स्वत्वस्य प्रागेव
जातत्वात् । अन्यथा प्रशस्त्यभावे निषेधानुपपत्तेरिति भावः
वाच्यमभवतेति शेषः । अस्त्वर्थेति । ऊर्द्धमभजेरन्नित्यस्य जीवति
न भजेरन्नित्यस्वार्थपरत्वापत्तेरित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् ।
स्वार्थहानिरपि बोध्याप्राप्तबाधस्तत्र नास्ति जीवति पितरि
विभागस्य प्राप्तेरिति बोध्यम् । एतेन स्वार्थहानिप्राप्तवानावपि
बोध्याविति चूडामणुक्तमयुक्तं । सप्रयोजनतयाऽनुवादेन
दोषायेति स्वमतमुपसंहरति ॥ ० ॥

अतो जीवतोः पित्रोर्द्वेने पुत्राणां स्वाम्यं नास्ति ।
किन्तूपरतयोस्तयोरिति ज्ञापनार्थं मन्वादिवचनम्
एकः शब्दोऽपरश्चार्थः । न चोपरममात्रमेव विव
क्षितम् किन्तु । पतितप्रव्रजितत्वाद्युपलक्षयति ।
स्वत्वविनाशहेतुतासाम्यात् ।

तदाह नारदः । मातुर्निवृत्ते रजसि दत्तासु
भगिनीषु च । विनष्टे वाप्यशरणे पितर्युपरतस्पृहे ।
विनष्टे पतिते अशरण इति गृहस्थाग्रमरहिते ॥०॥

अत इति । एको जीवति स्वात्माभावः शब्दः अनीशा इति
शब्दबोधितः अपरउपरमे स्वान्तर्योऽर्थो विभागेऽन्वयः
उपरमपदस्य यथाश्रुतार्थपरत्वे पतितादौ जीवति पितरि
तद्गुणविभागाभावप्रसंग इत्यत आह । न चेति । न हीत्यर्थः
आदिना वानप्रस्थत्वापरतस्पृहत्वपरिग्रहः लक्ष्यतावच्छेद
कमाह । स्वत्वविनाशेति । तथाच स्वत्वप्रतिसम्भानापूर्वकस्वत्वा
पगमहेतुयापारत्वेन लक्षणेत्यर्थः । तेन पिददत्तादौ न वि
भागप्रसंगः दानादेः स्वत्वप्रतिसम्भानपूर्वकत्वादिति । पाति
त्यादेः स्वत्वनाशकत्वे प्रमाणमाह । तदाहेति । अत्र पुत्रावि
भजेयुरित्युपक्रमलब्धत्वेन विभागानुवादात्पितृस्वत्वापगम
पुत्रस्वत्वधारवगमादिति भावः । निर्दोषे पितरि स्थिते इति
देवलवचनेन भदोषे पितरि तत्स्वाम्यनाशपुत्रस्वत्वावगमा
त्तदेकवाक्यत्वाच्च विनष्टे पतिते इति विनाशार्थकत्वे पितर्यु
र्हीगते पुत्रा इति नारदवचनात्तरेण सह पौनरुक्त्यापत्ते
रिति भावः । अतः पतितस्यापि सर्वस्वदानादिप्रायश्चित्त
श्रवणात् । प्रायश्चित्तपराप्नुतेति विशेषणन्दयन्तेन प्रायश्चित्त

॥ दायभागः ॥

२५

प्रागभावाभावसङ्गतस्यातिथ्यं स्वत्वमात्रेतिरिति बोध्यम् ।
 गृहस्थाश्रमरहित इति । गृहस्थाश्रमो गार्हपत्यादित्ये
 आश्रमान्तरगते इत्यर्थः गृहस्थाश्रमाश्रये इति पाठे
 ऽपि शरणं गृहस्त्रिचोरित्यमरकोपात् । तदरस्तरीति
 स एवार्थः उपरतसृष्टे स्वत्ववमानाधिकरणेच्छाप्रागभावा
 समानकालीनेच्छाध्वंसवति ॥ • ॥

यदा निवृत्ते वापि मरणादिति पाठः । तदा
 मरणान्निवृत्ते जीवति निसृष्ट इति पाठान्तरमना
 करम् । अत्राप्युपरतसृष्टत्वादिना पुत्राणां स्वत्वं
 पितृधने भवतीति ज्ञापनादयमेकः कालो विभाग
 स्येच्छाप्राप्तेऽनूद्यते । प्राप्त्यनुसारित्वाच्चानुवादस्य
 स्वामित्वाच्च प्राप्तः एकस्यापि स्वधने साम्यादेकेच्छ
 यापि विभागप्राप्तेः समेत्येति संहितत्वम्यक्षप्राप्त
 मनूद्यते अन्यथा साहित्यवत् वज्रत्वस्याप्यवगतेर्ह
 योर्विभागो न स्यादेव द्वयोर्विभागप्रतिपादकशास्त्रा
 भावात् । ननपरते पितरि ज्येष्ठ एव धनाधिकारी
 नेतरः ।

यथामनुः । ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पितृव्यन्धन
 मशेषतः । शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरन्तथा ।

ज्येष्ठोऽत्र पुत्रामनरकव्यावर्त्तकोऽभिप्रेतो न तु जीव
दपेक्षः ॥ ० ॥

यदेति । विनष्टे वापीति तृतीयचरणे निवृत्ते वापीति
यदा पाठ इत्यर्थः । तदाऽस्य निस्पृहत्वविशेषणत्वमाह । तदेति ।
यदा तदेत्यस्मरसंयचनाय तदीजस्य विशेषणवैयर्थ्यमेवेति पाठा-
न्तरमिति निवृत्ते वापि रमणादिति प्रकाशादिधृतपाठा-
न्तरमनाकरमित्यर्थः । वृद्धेषु अन्येष्वदर्शनात् । तथाविधे
पितरि विषयान्तरस्युद्भावत्यनि प्रसंगाच्चेति भावः । ज्ञापना-
दिति । ज्ञापनायेत्यर्थः । समेत्येति मिलित्वेत्यर्थः । मिलनञ्च सर्व्वे
षामुपनयन्ते एव तत्किमेकेच्छया न विभाग इत्यत्राह । एक-
स्यापि । स्वाभ्यादिति । तथाच स्वामित्वेन स्वतभ्यादेकेच्छया
विभागो नैवाधिक एवेति भावः । पक्षेति । कदाचित्सर्व्वे-
च्छया विभागः कदाचिदेकेच्छया यदा सर्व्वेच्छया तत्पक्ष-
प्राप्त इत्यर्थः । अनास्येति शेषः । अन्यथा न्यायप्राप्तानुवादकतां
प्रियाय वचनबलादेव तस्य विवक्षितत्वे । साहित्यवदिति ।
साहित्यं मिलनमात्रं न तु परस्परसापेक्षाणां तुल्यरूपाणां एक-
क्रियान्वयित्वरूपमात्रं साहित्यं विभागक्रियायावैशेषिकस्वत्वा-
वधारणरूपाया अक्षपातादिरूपतदनुकूलव्यापाररूपाया वा
सर्व्वान्वयात् वचनान्तरात् द्वयोर्विभागो भविष्यतीत्याशङ्का

॥ दायभागः ॥

३७

मपनयति । इयोरिति । किञ्चैव एकस्य विदेशस्थत्वे वात्या
दिनाऽज्ञानित्वे वा मिलनाभावात् विभागाभावे । अप्राप्तव्यव
हाराणां धनं व्ययविवर्जितं । न्यसेयुर्बन्धुवर्गेषु प्रेषितानामन्यैव
चेति वक्ष्यमाणवचनविरोधः स्यादिति । पित्रवक्त्रेऽष्ट एव पितुर
नन्तरन्वनाधिकारी तेन सह विभागएवेतरेषां नास्तीत्या
शङ्कते । नलिति ॥ ० ॥

यथामनुः । ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्रीभवति
मानवः । पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्तन्मृमर्हति
यस्मिन्नृणां सन्नयति येन चानन्त्यमश्रुते । स एव
धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः । नैतत्सर्वे
च्छाधीनज्येष्ठाधिकारश्रुतेः ।

यथा नारदः । विभृयाद्वेच्छतः सर्वान् ज्येष्ठो
भ्राता यथा पिता । भ्राता शक्तः कनिष्ठोवा शक्त्य
पेक्षा कुले स्थितिः । सर्वेच्छया कनिष्ठोपि शक्तः
सन्विभृयादिति । ज्येष्ठता चातन्त्रम् ।

यथा मनुः । एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मं
काम्यया । पृथग्विवर्द्धते धर्मस्तस्माद्दम्यया पृथक्
क्रिया । सह पृथग्वेति पदाभ्याद्दाम्ययेति चेच्छावि
कल्पकत्वन्दर्शयति ॥ ० ॥

पुत्रीभवतीति । पुत्रामनरकचाणकद्वयपुत्रवाभवतीत्यर्थः ।
 सतश्चादिति । तथा च ज्येष्ठस्य धनलाभे पुत्रामनरकचाण
 कद्वयपुत्रत्वस्य हेतुत्वेनोपादानात् । तद्रूपज्येष्ठस्यैव धना
 धिकारः । तद्रूपस्य जीवदपेक्ष्यज्येष्ठस्येति भावः । एतच्च सजा
 तीयस्त्रीजातेषु विजातीयस्त्रीजातेषु त्कृष्टाजातस्यैव ज्येष्ठत्वम् ।
 सदृशस्त्रीपुजातानामुच्चाणामविशेषतः । न मादतो ज्येष्ठ्यमस्ति
 जन्मतो ज्येष्ठ्यमुच्यते इति मनुवचनात् धर्मजः नतुरागजः ।
 अपुत्रास्तुत्वमदृश इति निन्दार्थवादादिति भावः । अदृशोऽदृशेन
 श्रीलाराक्षमा इति मिथ्याः तथा च विभागवचनं मृतज्येष्ठकनिष्ठ
 भ्रातृगणविषयमिति पूर्वपक्षयितुरभिप्रायः । ज्येष्ठता चात
 न्वमिति ज्येष्ठ एवेत्यवधारणं ज्येष्ठस्य सति भरणसामर्थ्यं ज्ञेयं ।
 वृथामिव दूते इति । यद्यप्यविभक्तानामप्येकेनैव कर्मणा सर्वे
 पान्थसौ दयात्पृथग्भावे धर्मद्विद्विरनुपपन्ना तथापि पार्थक्ये
 स्वस्वसाधारणद्रव्येण कृतकर्मणोऽतिशयितधर्मात्पक्षेऽस्त्यु
 क्तमिति ॥ ० ॥

तदेवं पितृस्वत्वापगमएकः कालोपरश्चान
 पगतएव । पितुःस्वाम्ये पितुरिच्छयेति कालद्वयं
 न पुनः पितर्युपरतदत्येकः कालः पितर्युपरतस्युचे
 मातुश्च निवृत्ते रजसीत्यपरः । अनिवृत्ते पि मातृर

जसि पितरि ससृष्टे तदिच्छेति कालत्रयमादर
णीयम् । मातरजोनिवृत्तेः पित्रुपरतसृष्टत्वविशेष
णत्वे त्रिंशद्वर्षावहेत्कन्यां ह्ययां द्वादशवर्षिकीम् ।
त्यष्टवर्षोष्टवर्षावा धर्मो सीदति सत्वरइति मनुना
विवाहकालविधानात् । वनस्पद्वाशतोत्रजेदित्या
श्रमान्तरगमनकालविधानात् । तदा च रजोनिवृत्ते
र्मातुरसम्भवे पितरि चोपरतसृष्टे वानप्रस्थे तत्पुत्रा
णामिच्छतामप्यविभागप्रसङ्गात् । निविशेषणमुप
रतसृष्टत्वमेव पितृधनविभागकालइति चेन्न अनु
परतसृष्टे पितरि पतितेऽप्यविभागप्रसङ्गात् ॥ ० ॥

अनपगतएवेति । यद्यपि पितुरिच्छया विभागेऽप्युपेक्षया
पितुः स्वल्पाशोऽप्यवश्याभ्युपेक्षः अन्यथा स्वाकृतिभागस्यैवा
नुपपत्तेः । तथापि विभागेच्छातदधीनस्वत्वावगमाभ्यां काल
द्वयमुक्तम् । वस्तुतोलाघवादितरस्वत्वाभिसम्भानापूर्वकपितृ
स्वत्वापगमकालएकएव दायस्य विभागे निमित्तं ननु काल
द्वयं गौरवादिति वार्थः । सृडामपिसम्भतोप्यथं पक्षइति
यच्च तु पुत्राणां सम्भाव्यमानानुभाविकलघुनिराकरणार्थमिता
तत्तदंशानवधार्य पुनस्तेषु स्वयमधिकरोति न तत्र विभागः
पितरुपेक्षाविरहेण तत्स्वत्वस्यैव विद्यमानत्वात् । तेन तत्र

विभागप्रयोगोभाक्तएवेति मिताचराकृतमिरस्यति ।
 नपुनरिति । वहेदुदहेत्सत्वरइत्यनेन उक्तादल्पकालपरिगृही
 तादरः । तदाचेति । द्वात्रिंशच्चतुस्त्रिंशद्वर्षमध्य इत्यर्थः
 त्रिंशद्वर्षेणोदाहितायादादशवर्षीयायाः स्त्रियाः पत्युःपञ्चा
 शद्वर्षसमये द्वात्रिंशद्वर्षवयस्कत्वात् । एवं चतुर्विंशतिवर्षेणो
 दायाः स्त्रियाश्चतुर्वर्षीयायाः पत्युःपञ्चाशद्वर्षेचतुस्त्रिंशद्वर्षीय
 क्त्वात् । अविभागप्रसंगादिति । इदन्तु न सम्यक् इदानीमवि
 भागस्येष्टत्वात् । अन्यथा पुत्रेषु दारान्निःक्षिप्य वनं गच्छेत्
 सहैव वा इतिरागनिवृत्त्यनिवृत्तिभ्यां प्रकारद्वयविधानेन
 रागानिवृत्तौ सह वनगमनपक्षे वानप्रस्थाश्रमोत्पन्नपुत्राणां
 वृत्तिलोपापत्तेः । गृहस्थस्तु यदा पश्चेदलीपलितमात्मनः ।
 अपत्यपुत्रतत्पुत्रास्तदारण्यं समाविशेत् । इत्युक्तकालान्तरे
 चारण्यगमने विभागस्य नानुपपत्तेः इदानीं मातृरजोनि
 वृत्तेरपि स्वत्वादिति बोध्यं । केचित्तु अविभागप्रसंगादिति ।
 नचेष्टापत्तिः व्यवहारविरोधात् । वानप्रस्थस्य पत्नीसहित
 वनगमनपक्षेऽप्यूर्ध्वरेतस्त्वात् । अपत्यसंभावनानिवृत्तेः स्वतः
 सिद्धत्वेन तत्परत्वाम्भवाददृष्टार्थकल्पनागोरवाच्चेत्याहुः ।
 तदसत् । नहि वनगमनमेव पुरुषस्य ऊर्ध्वरेतस्त्वं जनयति येन
 तदनन्तरमपत्यसंभावनानिवृत्तिः स्यादिति । निवृत्ते रज
 सोत्पत्त्यस्तु विषयः स्वयमेव परतोवक्ष्यते ॥ ० ॥

अयमप्यपरः कालइत्यभिधाने कालचतुष्टया
पत्तिः पितुरुपरमः पतितत्वं निस्पृहत्वमिच्छाचेति ।
यच्च कार्याक्षमे पितरि पुत्राणां विभागे स्वातन्त्र्य
मुक्तान्तदचनानभिज्ञत्वेन ।

तथा च हारीतः । जीवति पितरि पुत्राणामर्था
दानविसर्गाक्षेपेषु न स्वातन्त्र्यम् । कामन्दीने
प्रापिते आर्त्तिङ्गते वा ज्येष्ठार्थाश्चिन्तयेत् । सुव्यक्त
माहृतुः शङ्खलिखितौ । पितर्यशक्ते व्यवहारान्
ज्येष्ठः प्रतिकुर्यात् । अनन्तरोवा कार्यक्षस्तदनु
मतेनान्वकामे पितरि रिक्तविभागोवृद्धे विप
रीतचेतसि दीर्घरोगिणि वा ज्येष्ठएव पितृवद्
र्थान् पालयेदितरेषाम् ॥०॥

कालचतुष्टयन्दर्शयति । पितुरुपरमइत्यादिना कार्या
क्षमइति । अतिवृद्धत्वादिनेति शेषः आदानं ग्रहणं विसर्ग
स्त्यागः आक्षेपोन्यासकरणं न स्वातन्त्र्यं न तदनुमतिं विनाऽधि
कारः दीनेऽतिवृद्धत्वादिना दुःखिते आर्त्तिं गतेऽत्यन्तशोक
रोगादिभिः पीडिते । एतदचने स्वयंवस्त्यमाहः कार्याक्षमादौ
पितरि भागनिषेधेन ज्येष्ठस्य गृहयो गच्छेमाचरणरूपोऽर्थेन
व्यक्तः न स्वातन्त्र्यमित्यस्य पितुः स्वास्त्यदशाद्यमेव सम्भवात् ।

चिन्तयेदित्यस्य च विभागार्थं चिन्तयेदित्यर्थसम्भवादत आह ।
 मुख्यकमिति दृष्टे सर्वकर्माक्षमे उन्मादे विपरीतचेतसि दीर्घं
 रोगिणि चिरतरकालं महारोगिणि । पिबवदिति पिता
 यथा सर्वेषां पालनपुरःसरमर्थाननुपालयेत् । तथैतरेषां
 कनिष्ठानाम्पालनपुरःसरमर्थान् पालयेदित्यर्थः तेन तथा
 भूते पितरि ज्येष्ठस्य कनिष्ठपालनपुरःसरमर्थपालकता
 प्रतिपादिता । अर्थपालने हेतुमाह ॥ ० ॥

अथमूलं हि कुटुम्बमस्वतन्त्राः पितृमन्तो
 मातुरप्येवमवस्थितायाः । एतद्वचनद्वयं कार्याक्षमे
 दीर्घरोगिणि च पितरि विभागं निषिध्य ज्येष्ठ एव
 गृहचिन्तयेत् । तदनुजोवा कार्य्यज्ञ इत्याह । अतो
 नत्वकामे पितरोत्येतदेव कार्याक्षमे पितरि रिक्त्य
 विभाग इति भ्रान्तलिखितम् । तस्मात्पतितत्वनिसृष्ट
 त्वोपरमैः स्वत्वापगमइत्येकः कालोऽपरश्च सति
 स्वत्वे तदिच्छातइति कालद्वयमेव युक्तम् । मातुर्नि
 वृत्ते रजसीतितु पितामहधनाभिप्रायम् । निवृत्ते
 रजसि पुत्रान्तरसम्भावनाभावात् । तदानीमपि
 पितुरिच्छयैव पुत्राणां विभागः । अनिवृत्ते रजसि

क्रमागतधनविभागे पश्चाज्जातानां वृत्तिलोपा
पत्तेः । नचासौ युक्तः ।

ये जातायेष्यजातावा येच गर्भे व्यवस्थिताः ।
वृत्तिन्तेऽपि हि काङ्क्षन्ति वृत्तिलोपोविगर्हितइतिमनु
वचनात् यतएवपितृधनेकालद्वयम् अतएवमनु
गौतमादिभिर्मृतपदमरित्यज्य ऊर्द्धमित्युक्तम् ।
ऊर्द्धमित्युरिति पितुस्तदा स्वत्वापगमात् । तद
र्थमेवोर्द्धमित्युक्तम् । अतोयमेकोविभागकालः ।
ऊर्द्धं विभागाज्जातस्वित्यनेन च ससृष्टे पितरि
तदिच्छया विभागकालोऽपरोदर्शितः ॥ ० ॥

अथमूलं हीति । कुटुम्बं कुटुम्बभरणङ्गार्हस्यपत्न्या अस्व
तन्वायथेष्टविनियोगानधिकारिणः अनेन पितृस्वले पुत्राणा
मस्वातन्त्र्यं विभागादौ स्फुटमंवाभिहितमिति एवंमातरि जीव
न्यामस्वतन्त्राः अतउक्तवचनानभिज्ञत्वात् । एतदेवेति । सुप्रा
सुपेति मत्तम्यर्थे प्रथमा एतत्पाठस्थले एवेत्यर्थः । कार्य्याक्षमे
पितरि रिक्त्यविभागइति यद्विहितं तद्भ्रान्तलिखितमित्यर्थः
कार्य्याक्षमत्वसमयरूपविभागकालान्तरं निरस्य स्वीकृताकार्याय
पुनरुपसंहरति । तस्मादिति । ननु तर्हि मातुर्निवृत्ते रज
सीत्यस्य कोविषयइत्यतआह । मातुरिति । पुत्रान्तरसम्भावना

भावादिति । तेन मातृपदमिदमप्युपलक्षणं तदानीमपि
 पित्रपत्नीरजोनिवृत्त्युत्तरकालेपि । पितुरिच्छयैवेति । अत्र
 प्रमाणं वक्ष्यते । ननु पुत्रान्तरसम्भावनासत्त्वे पितामहधनवि-
 भागे काश्चित्तिरित्यत आह । अनिवृत्तेति । वृत्तिलोपः पिता
 महधने निरंशकत्वं । अयुक्तत्वे हेतुमाह । येजतादिति । जाता
 उत्पन्ना अजाता भविष्यद्गर्भसम्बन्धाः ऊर्द्धं स्वत्वावगमे रजोनि-
 वृत्तिरूपस्वतन्त्रकालनिरासेन पुनरुपसंहरति । अत इति ।
 अयं स्वत्वापगमकालः । प्रमाणदर्शनपूर्वकं कालान्तरमाह
 ऊर्द्धमिति । अपरः पितृस्वत्वापगमादन्यः पितुरिच्छासमय-
 रूपः यच्छिष्टं यदवशिष्टं यथेदं नारदवचनस्य विभागकाला-
 न्तरप्रदर्शनार्थं । किन्तु चणपरिशोधनावश्यंभावार्थं अन्यथा
 चणो न स्यादिति वैयर्थ्यापत्तेः ॥ ० ॥

दत्तासु भगिनीषु चेति न कालार्थम् । किन्तु ।
 तासामवश्यन्दानार्थम् ।

तथा यच्छिष्टमित्येव दायेभ्योदत्तवर्णमैव कन्ततः ।
 भ्रातृभिस्तद्विभक्तव्यमृणी न स्याद्यथा पिता । इदं
 नारदवचनम् । पित्रर्णशोधनावश्यंभावार्थं न
 विभागकालार्थम् । अस्माच्च नारदवचनादयमर्थः
 सिध्यति । यदि भागकर्तृभिरुक्तमर्णानुमत्यैव पित्रादि

ऋणं विभजनीयमपरिशोध्यं वा शोधना
वशिष्टधनविभागप्रतिपादनस्यैवं तत्प्रयोजनत्वात् ।
अतएव मातृधनस्यापि ऋणावशिष्टस्यैव विभाग
माहयाज्ञवल्क्यः । मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य
ऋतेऽन्वयः । एतच्च विस्तरेण^{मृणा} दाने वक्ष्यते । यदा
दत्तासु भगिनीषु मातृधनमप्यत्रैव विभजनीयम् ।
अदत्तासु ताभिः सह शाधारणमेतच्चावसरे
वाच्यम् । एवन्तावत्पितृधनविभागस्य कालद्वयमप्यु
क्तम् । सम्प्रति पितामहधनविभागकालोऽभिधीयते ।
तत्र वृद्धस्थितिः । पित्रारभावे भ्रातृणां विभागः
सम्प्रदर्शितः । मातुर्निवृत्ते रजसि जीवतोरपि
शस्यते । नास्य वचनस्य पितृधनगोचरत्वं । ऊर्द्धं
विभागाज्जातस्त्वित्यस्य निर्विषयत्वापत्तेः ॥ ० ॥

तथादत्तास्त्विति भगिनीदानावश्यंभावार्थमित्यर्थः । एतन्न
द्यो जनत्वाद्दणपरिशोधनावश्यंभावप्रतिपत्तिमात्रप्रयोजनत्वात् ।
अतएव ऋणपरिशोधानस्यावश्यकत्वादेव । ताभ्यऋते दुहितृ
भ्राविना । नन्वन्वयोदुहितृभ्रातृभ्यां तच्चाह । एतच्चेति ।
वक्ष्यते मातुरन्वय इति व्यवस्थापयिष्यते । पञ्चान्तरमाह ।
अदेति । मातृधनमयौतकं यौतके दौहित्रपर्यन्ताभाव एव

पुत्राधिकारस्य वक्ष्यमाणत्वात् । तथाच दत्तासु भगिनीषु
चेतिमातुरयैतकधनविषयमिति भावः । अवसरे प्रकृतधन
समाप्तौ स्त्रीधनविभागप्रकरणे । उक्तं व्यवस्थापितं । न्यायवच
नाभ्यामिति शेषः । पितृधनविभागकाले कथिते पितामहधन
विभागकालस्याकाङ्क्षितत्वात् वक्तुमतिजानीति । सम्मतीति ।
निर्विषयत्वे हेतुमाह । निवृत्ते रजसीति ॥ ० ॥

निवृत्ते रजसि पुत्रोत्पत्तेरभावात् । मातृधन
विषयत्वञ्चास्य नाशङ्कनीयम् । एवं मातुरेव
निर्धनत्वापत्तेः । अतो निवृत्ते रजसीति पितामहादि
धनविषयम् । न चेच्छामनपेक्ष्य रजो निवृत्तेर्विभाग
निमित्तत्वं सम्भवतीति । अनिच्छया विभागाभा
वात् । सत्यामिच्छायां कस्येच्छयेत्यपेक्षायां ऊर्द्धं
पितुः पुत्रारिक्त्यं विभजेयुः । निवृत्ते रजसि मातु
र्जीवति चेच्छतीति गोतमवचनात् पितुरेवेच्छात
इति निर्णीयते ॥ ० ॥

नच पित्रोरभावदति वचनम्विदधनविषयम् । ऊर्द्धं विभा
गाज्जातस्त्विति पितामहधनविषयमिति वैपरीत्यमेव कुतो
न स्यात्पितामहधने पितुः पुत्रेभ्यः स्त्रीच्छाकृतन्यूनाधिकदान

स्यापि निवेधेन उत्पत्त्यमानपुत्रनिरंशितायाः सर्व्वयव निधि
 द्रुत्वात् । तत्रैव मातरजोनिवृत्तेः सहकारित्वैवित्यात् । नच
 पित्रा स्वयं वृद्धीते' इति तदनन्तरस्तस्यैवाधिकारात् न निरं
 शितेति वाच्यं । तस्य पितृपभोगोपक्षेपत्वे निरंशितायादुर्व्व्या
 रत्वात् । पैतृके तु तस्य स्वेच्छा स्वयमुपाप्तेऽर्थे इति विष्णुवचनेन
 इच्छायानियामकत्वाभिधानात् । इच्छेत्युत्पत्त्यमाननिरं
 शितायामप्यविरोधात् । न तत्रास्य सहकारितेति । अतएव
 वृत्तिलोपोविगर्हितइति प्रागुक्तवचने वृत्तिपदं पितामहधन
 परमिति सुधीभिर्भाष्यं । निर्द्धनत्वापत्तेरिति । रजोनिवृत्ति
 मात्रेण तस्याः स्वत्वनाशे पुत्राणां तद्धनविभागइत्यर्थः । उप
 संहरति अतइति । यतोऽन पित्रधनगोचरत्वमतइत्यर्थः ।
 ननु निरपेक्षश्रुतिवलात्पितुरनिच्छयापि मातरजोनिवृत्तौ
 पुत्राणां विभागः स्यादतश्चाह । नचेच्छामिति विभागनिमि
 त्तत्वं विभागोपधायकत्वं । अनिच्छयेति स्वारसिकेच्छां विने
 त्यर्थः । विभागाभावादिति । विभागस्य दृष्टार्थकतया स्वार
 सिकेच्छाधीनत्वनिश्चयमादित्यर्थः । सत्यामपेक्षितायामिच्छार्थः ।
 कस्य पितुः पुत्रस्य वा पितुरेवेच्छातइति । जीवति चेच्छ
 तोत्यनयोऽरिच्छाजीवनयोः सामानाधिकरण्यानुरोधादिति
 भावः । तेन तदानीमपि विभागे पितुरेव स्वाभित्वात् स्वातन्त्र्यं
 न पुत्रेच्छया विभागोऽस्वामित्वे नास्वातन्त्र्यादित्यभिहितं

वधामृतमृतं न संगच्छते इच्छायां सामानाधिकरस्यकृतिद्वारा
विभागप्रयोजकत्वस्य सिद्धत्वे न तत्र कस्येत्याकाङ्क्षानुदयात् ।
तत्प्रतिपादनस्य प्रकृतानुपयोगित्वाच्चेति द्रष्टव्यम् ॥ ० ॥

अतः पित्रोरभावइत्येकः कालः । पित्रोरिति
द्विवचननिर्देशात्सोदरभ्रातृणाम्पितृधनविभागोपि
मातुरभावएव कार्यः । ननु मातृधनविभागार्थं
मातुरभावस्योपादानं । जीवतोरपीत्यस्य मातृधन
गोचरत्वानुपपत्तेः अन्यधनगोचरत्वमवश्यंवाच्यम्
तेन यत्रैव पित्रोरभावोनिमित्तन्तत्रैव जीवतोर
पीत्यपिशब्देन जीवनस्यापि शस्तत्वकीर्त्तनान्न मातु
रभावोमातृधनेव्याख्येयः ॥ ० ॥

अतइति । यतोवृहस्पतिवचनस्य न पितृधनविषयत्वमत
इत्यर्थः एकः कालः पितामहधनविभागदतिशेषः । अथवा
यतोऽपत्यसम्भावनाभावः । पितुरिच्छासहकृतएव विभाग
निमित्तञ्चतु म्मातृव्येणातइत्यर्थः । एकः कालइति पितुरिच्छा
सहकृतमातृरजोनिवृत्तिकात्तादतिरिक्तः कालइत्यर्थः ।
अन्यथा मरणादावप्यपत्यसम्भावनाविरहस्याप्यविशिष्टत्वेन
पित्रोरभावइति पृथक्कालोनाभिहितः स्यादिति भावः । अतोऽ

स्मृतोपसंहारार्थत्वम् । तेन वक्ष्यमाणतस्मादित्युपसंहारेण
सह न पौनरुक्त्यमिति द्रष्टव्यम् । एतेनास्याप्युपसंहारार्थमित्य
भिप्रायेण लिखित्यमाणतस्मादित्युपसंहारे पुनरुपसंहारे
तीति चूडामणिलिखनमपर्यालोचनविजृम्भितमिति बोध्यम्
ननु पित्रेरिति साहित्यमविवक्षितमेव । अन्यथा जीवति पितरि
मातुरभावेऽपि साहित्यावच्छिन्नाभावसत्त्वात् । विभागप्र
सङ्गात् । तथाच द्विवचनस्यावयवार्थाय पितुरभावोमातुरभा
वश्चेति इयं विभागतानिमित्तं स्यात् । नतु पितुरुप
रममात्रमचेष्टापत्तिमाह । पित्रेरिति । विमातृर्माहत्वा
भावात् । तत्सत्त्वे सपत्नीपुत्राणां विभागे बाधकाभावरत्यर्थं
बललभ्यमाह । सोदरभ्रातृणामिति कार्य्यदति प्रशस्त
इत्यर्थः । अतएव वक्ष्यति सोऽपि मातरि जीवन्त्यां न धर्म्यदति
तथाच मातुरभावोविभागप्राप्तस्यमात्रनिमित्तं नतु विभागे
पित्रुपरमानन्तरमेव पुत्राणां धनस्वामित्वे न विभागे स्यात्
स्यात् । अदृष्टार्थत्वकल्पनायाश्च अन्याय्यत्वादितिभावः ।
अस्य उक्तवचनस्य । मातृधनगोचरत्वानुपपत्तेरिति । मातु
र्निर्धनत्वापत्तेरिति शेषः । अन्यधनगोचरत्वं मातृधनातिरिक्त
धनगोचरत्वं तच्चैवेति । सन्निहिते बुद्धिरन्तरङ्गा इति
न्यायादुपस्थितविभागएव नतनुपस्थिते विभागान्तरइति
भावः ॥०॥

एतच्च विस्तरेण वाच्यम् । तस्मात्पितामहादि
 धनस्यापि पित्रारभावइत्येकोविभागकालः । तथा
 मातुर्निवृत्ते रजसि पितुरिच्छातइत्यपरः । नतु
 पितुरिच्छामन्तरेणैव तस्य विभागः । अनीशास्तेहि
 जीवतोस्तथा अस्वाम्यं हि भवेदेपां निर्दोषे पितरि
 स्थिते । तथा जीवति चेच्छतीति । तथा पितुरनु
 मत्या दायविभागः । तथा जीवति पितरि रिक्थ
 विभागोऽनुमतः । तदेवमादिमनुनारदगोतमबौधा
 यनशङ्खलिखितादिभिरविशेषेण जीवति पितरि
 पुत्राणां यावद्वनगोचरास्वामित्वस्य पितुरिच्छाधी
 नविभागस्य च प्रतिपादनात्पैतामहधनविभाग
 कालस्य च पृथगेभिरनभिधानात् पैतामहधन
 गोचरत्वमप्यनीशत्वंपित्रनुमतिवचनानाम् । यत्तु
 याज्ञवल्क्यवचनम् । भूर्यापितामहोपात्ता निबन्धो
 द्रव्यमेव वा । तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यमितुः पुत्रस्य
 चोभयोः । तस्य निरवद्यविद्याद्योतेन द्योतित
 स्तत्त्वतोयमर्थः । यत्र द्वयोर्भात्रोर्जीवत्पितृकयोर्
 प्राप्तभागयोरेकः पुत्रमुत्पाद्य विनष्टोऽन्यो जीवति
 अनन्तरम्यितामृतस्तत्र पुत्रएव तद्वनम्प्राप्नोत्वति
 सन्निकर्षात् । तदर्थं सदृशं स्वाम्यमिति वचनम् ॥०॥

ननु तर्हि मातृधनविभागे किं निमित्तमत्राह । एतच्चेति
वाच्यं मातृधनविभागावसरे इति शेषः । उपसंहरति तस्मा
दिति । विशेषाभिधानाच्च पुनराह नत्विति । उक्तवचनानां
पितृधनविभागप्रकरणनियमितत्वात् । तद्विषयकत्वञ्चा
मपनेतुमाह । पैतामहेति तथाच प्रकरणमपि साधारण
मिति भावः । पैतामहे पितुरेव स्वामित्वे चाश्वत्थवचन
विरोधमपनेतुमाह । यत्विति सदृशं स्वाम्यमिति । यथाश्रुतार्थं
मादाय विरोधाबोधः तस्य उक्तवचनस्य । निरवयेति निरवद्या
उत्कृष्टा या विद्या सैव दिवाकरः तस्याद्योतेनोदयेन द्योतितः
प्रकाशित इत्यर्थः गुणसिन्धुरित्यादौ सिन्धुपदार्थसामर्थ्यात्
यथा गुणे जलत्वं व्यङ्ग्यन्तयोद्योतपदार्थसामर्थ्यात् विद्यायां
दिवाकरत्वं व्यङ्ग्यमिति । पुनरेव ननु मृतपितृकपौत्रस्य तदर्थं
मृतपितृकपौत्रस्य प्राप्त्यर्थन्तयेवेति । एतेन मृतपितृकपौ
त्राणां बहूनामपि मिलित्वैकोभागः पितृव्यस्य चापरोभागो
ननु तेषां प्रत्येकस्य पितृव्येण सह तुल्यांशतेति प्रतिपादितं ॥ ० ॥

यथा पैतामहधने पितुः स्वाम्यन्तथैव तस्मिन्मृते
तत्पुत्राणामपि न तत्र सन्निकर्षविप्रकर्षाभ्यां कोपि
विशेषः । पार्वणविधिना पिण्डदानेन दयोरपि
तदुपकारकत्वाविशेषादित्यभिप्रायः । अतएव मृत

पितृकः प्रपौत्रोपि पुत्रपौत्राभ्यां सह तुल्याधिकारी
 भवति पिण्डदत्ताविशेषात् । जीवतितु पितरि
 पुत्राणां धनस्वामित्वे सपुत्रापुत्रभ्रातृद्वयविभागे
 तत्पुत्राणामपि भागः स्यात्स्वामित्वाविशेषात् । तथा
 चाप्रक्रान्तत्वेनातर्क्यत्वं वचनस्थानेकपितृकानां
 मेव प्रक्रमात् निबन्धः कार्त्तिक्यां कार्त्तिक्यामिदन्दा
 स्यामीति यन्निबन्धनद्रव्यं भूसाहचर्याद्विपदमभिहि
 तम् ॥ ० ॥

अतएव उपकारत्वाविशेषादेव पिण्डदत्ताविशेषादिति
 तेन पुत्रपदव्याख्याधिकारिसंगोत्रोपलक्षणमितामहपदस्य
 पार्वणोद्देश्यपितृपूर्वपुरुषपरमितृपदं अंशपूर्वपुरुषधन्य
 सत्यपरमिति बोध्यम् । नत्वेवं मृतपितृकप्रपौत्रस्य प्रपितामह
 धने पितामहे न सह तुल्याधिकारः स्यादुपकारविशेषादि
 तिचेन्न तस्य प्रपितामहपार्वणनियमात्पितामहे जीवति तु
 पितर्येव समापयेदित्याद्युक्तेः अतो नियततत्पार्वणकर्तुः
 पितामहस्य तदपेक्षयोपकारिविशेषस्य स्फुटत्वादिति निरवय
 वजनस्य सङ्कोचेन सामान्यतएव पौत्राणां पित्रा सह पितामह
 धने तुल्यास्वामित्वे बाधकमाह । जीवतित्विति स्वामित्वाविशेषा
 दिति भवन्मृतदतिशेषः तथाच व्यवहारविरोधइतिभावः ।

इदमुपलक्षणं । एवञ्चेत्पुत्रेच्छयापि विभागप्राप्ते मातुर्निवृत्ते
रजसि जीवति पितुरिच्छाधीनविभागप्रतिपादकप्रागुक्तप्राप्त
विरोधाद्रष्टव्यः । अतदर्थत्वमित्यद्वये स्तुतपितृकभ्रातृपुत्रेषु
सह पितृव्यस्य तुल्यसामित्वविषयकत्वं प्रकमादिति । अनेक
पितृकाणान्तु पितृतोभागकल्पनेत्यनेनानेकपितृकाणामेव
प्रक्रान्तत्वादित्यर्थः । अत्रानेकपितृकाणामेकपितृकभिन्नानां
विभिन्नपितृकाणामित्यर्थः । निबन्धः प्रतिवर्षं प्रतिमासादि
वा दातव्यत्वेन प्रतिश्रुतवस्तुरूपदतिव्याचष्टे निबन्धइति साह
चर्यादिति । स्यावरं द्विपदञ्चैव यद्यपि स्वयमर्जितं इत्यादि
वचमाणे भृदिपदयोरेकक्रियान्वयादित्यर्थः ॥ ० ॥

अयम्वा धारेश्वरपुरस्त्वनोवचनार्थः । इच्छया
विभागदानप्रवृत्तस्य पितुः पैतामहधने सहश्रं
स्वाम्यम् । पुत्रैः सह न तत्र सोपार्जितधनइव न्यू
नाधिकविभागमिच्छातः कर्तुमर्हतीति ।

यथा विष्णुः पिता चेत्युत्रान्विभजेत्तस्य स्वेच्छा
स्वयमुपात्तेऽर्थे पैतामहेतुपितापुत्रयोस्तुल्यं सामित्व
मिदं सुव्यक्तम् । यदि पिता पुत्रान्विभजति तदा
सोपात्तेऽर्थेन्यूनाधिकविभागं सेच्छया पुत्रेभ्योद
द्यात् । पैतामहेतु नैतत् यस्मात्तत्र तुल्यं सामित्वं ।
न पुनः पितुः स्वेच्छन्दवृत्तिता ॥ ० ॥

नन्वेवमप्यपदस्य द्विपदपरत्वे पैतमाहमणिमुक्तादिद्रव्यं
 पितृव्यस्यैव स्यान्न तथाविधौचादीनां द्रव्यसामान्यपरत्वे
 भूम्यादीनामृचगुपादानं व्यर्थं अथ गोवृषभ्यायात् भूमिदिप
 द्वयोः प्राश्नस्यार्थमेव पृथगुपादानं साहचर्य्यन्तु न्यायपर्य्यव
 सायितया सास्वतोदुर्बलत्वादकिञ्चित्करमिति चेत्तथापि
 उपकारित्वाविशेषात् । प्रतिपौत्रमिद्व्येष सह तुल्यंशित्वा
 यत्तौ शिष्टाचारविरोधइति विभाव्याह । अथवेति । अयं वक्ष्य
 भाणः तमेवाह । इच्छयेति उक्तार्थे मुनिस्वरसमाह । यथे
 तिस्वरसं प्रकाशयति इदमिति । अत्रायम्भावः यदि विष्णु
 वचने स्वेच्छैव विभागप्रयोजिकादत्यर्थकल्पनया स्वार्जिते
 पुत्रेच्छाव्यावर्त्तते तदा पैतामहे पुत्रेच्छयाऽपि विभागः प्रस
 ज्येत तच्च न सम्भवति स्वार्जिते पुत्राणां स्वामित्वाभावेन तेषां
 मिच्छया विभागाप्रसक्तोः वचनवैफल्यत् । जीवति चेच्छतीति
 प्रागुक्तेन विरोधश्च स्यात् । अतः स्त्रोपात्तेऽर्थे स्वेच्छान्यूनाधि
 कविभागप्रयोजिकेत्येवार्थः एवं च सति व्यदर्शदबोधकतुशब्द
 चलात्स्वेच्छया पैतामहे न्यूनाधिकविभागप्रयोजकत्वव्यवच्छेद
 एव सम्भते इत्येतदेवाह यदीति । नैतत् नस्वेच्छया न्यूनाधि
 कविभागदानम् । नपुनरिति । स्वच्छन्दवृत्तितान्यूनाधि
 कदानाधिकारिता तथा चोक्तार्थे तुल्यं स्वामित्वमिति लाञ्छ
 निकः प्रयोगः सावधानावेयं उक्तयुक्तिप्राप्ता न दूषणावहेति
 भावः ॥ • ॥

अतः पितापुत्रयोः पैतामहधने समविभागार्थं
सदृशं स्वास्थमिति वचनं पुत्राणां विभागः स्वातन्त्र्या
र्थमिति मतद्वयमपि हेयम् । एवमेवापरमपि वचनं
व्याख्येयम् । अतः पैतामहादिधने पितुर्भागद्वयं
पितुरिच्छातएव विभागो न पुत्रेच्छयेति सिद्धम् ।
यच्च मनुविष्णू । पैतृकन्तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदा
प्राप्नुयात् । न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामः स्वयमर्जितं ।
स्वार्जितत्वेन हेतुना नाकामो विभजेदिति वदन्तौ
स्वयमर्जिते पैतामहधने पितुरनिच्छयापि पुत्राणां
विभागं दर्शयतस्तत्रापि विभागदानप्रवृत्तेः पिता
पितामहधनं स्वार्जितं नाकामो विभजेत् अन्यत्पुन-
रकामोपि विभजेदिति सेच्छयैवेत्यर्थः । न पुनः
पुत्रेच्छया विभागं ज्ञापयता मणिमुक्तादौ तु पुनः
पैतामहे पित्रनर्जिते स्वार्जितइव पितुरेव स्वास्थं
न्यूनाधिकविभागदानार्हत्वञ्च ॥ ० ॥

अत इति । यत उक्तार्थपरतयोपपत्तिरत इत्यर्थः । मत-
द्वयमिति मिताक्षराकृतप्रभृतीनामिति शेषः हेयमिति सम-
विभागः यस्यान्निरसनीयः पुत्रेच्छया विभागस्तु निरस्तएवेति
भावः । एवमेव पितामहधने पुत्राणां पितृकृतविषमविभाग

निषेधपरं तथैव भागदयमिति जीवद्भिर्भागेतु पिता वृद्धीतां
 श्रद्धयं स्वयमित्यादिवचने भागदयस्य वक्ष्यमाणत्वात् सिद्ध-
 वस्तिर्द्विषः । पितुरिच्छातइति जीवति चेच्छतीति प्रागुक्ते
 रितिभावः । न पुत्रेच्छयेत्यत्र वचनान्तरविरोधमपनेतुमा-
 शङ्कते । यचेति । पैतृकमन्यैरपहृतं अनवाप्तं अंश्यन्तरैरनुद्ध-
 तमवाप्नुयात्स्वयमर्जितमिति वदन्तौ मनुविष्णूदित्यन्वयः । ननु
 कामनां विना कथं विभागकृतेः कामनासाध्यत्वादत आह ।
 अस्तेच्छातइति । अस्वारसिकेच्छातः प्रत्यवायभयमात्रजनि-
 तेच्छातएवेत्यर्थः । एवं च प्रकारान्तरेण जीवनचमेषु स्त्रोद्धृत-
 भूम्याद्यंशदानेन प्रत्यवायः अनुद्धृते न्यूनाधिकदानस्यैव
 निषिद्धत्वादिति बोध्यम् । ज्ञापयतेति जीवति प्रागुक्तविरोधा-
 दितिभावः । पित्रनर्जिते पित्रनुद्धृते स्वात्म्यं स्वातन्त्र्यं तदेव
 विवृणोति न्यूनाधिकेति ॥ ० ॥

तथा याज्ञवल्क्यः । मणिमुक्ताप्रवालानां सर्व-
 स्यैव पिता प्रभुः । स्थावरस्य तु सर्वस्य न पिता न
 पितामहः । पितामहश्च्युतेस्तद्वनविषयकवचनं मणि-
 मुक्ताद्युपादाय पुनः सर्वस्येत्युपादानात्सर्वेषाम्भू-
 म्यादिव्यतिरिक्तानां दानादिषु पितुः प्रभुत्वं न स्थाव-
 रनिबन्धद्रव्याणाम् । तत्रापि सर्वस्येत्युपादानात्

सर्वस्य कुटुम्बवर्त्तनहेतोर्दानादिनिषेधः । कुटुम्ब
स्थावश्यं भरणीयत्वात् ।

ययामनुः । भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसा
धनम् । नरकस्पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तस्मरेत्
अल्पस्य तु वर्त्तनाविरोधिना न दानादिनिषेधः ।
सर्वस्येत्यानर्थक्यापत्तेः स्थावरग्रहणान्निबन्धद्विप
दयोर्दण्डापूपन्यायादानादिनिषेधसिद्धिः ॥०॥

पितामहश्रुतेरिति । पितृस्थावरादौ पितामहप्रभुत्वस्या
प्रसक्तेरिति भावः । पुनः सर्वस्येति वचनभेदान्मृषादीनां विभे
षणत्वासम्भवेन पृथगुपादानस्य सुवर्णादिद्रव्यान्तरप्राप्त्यर्थ
त्वादिति भावः । नचैवं सर्वस्येत्यनेनैव सिद्धौ मृषादीनां
पृथगुपादानवैयर्थ्यं एतस्योपलक्षणत्वात्सुवर्णादिषु कस्य
प्रभुत्वमिति जिज्ञासाया अपि निवर्त्यत्वात् । गोवृषन्यायादा
पृथगुक्तिरिति । पोष्यवर्गस्येति । सच पिता माता गुरुभार्या
प्रजा दीनाः समाश्रिताः । अभ्यागतोऽतिथिश्चैव पोष्यवर्ग
उदाहृत इति मनुनैवोक्तेः । आनर्थक्यापत्तेरिति । अल्पस्यापि
दाननिषेधे सर्वस्येत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेरित्यर्थः । स्थावरग्रहणा
दिति । त्रयाणां युगनद्धवाहिलादिति भावः । ननु निबन्ध
द्विपदयोः कथं स्थावरग्रहणात्सिद्धिः तयोः स्थावरपदार्थत्वा

भावात् अतश्चाह । दण्डेति तथाचापदार्थत्वेऽपि न्यायादेव
 तस्मिद्विरित्यर्थः स च न्यायोयथा दण्डविद्धापूपानन्ददण्डान
 यनादवश्यमानयनस्तथा युगनद्ववाहित्वात् । एकस्यायहणा
 दपरयोरपिसिद्धिरिति केचिदाहुः । वस्तुतस्तु एकत्र स्थापित
 योर्दण्डापूपयोर्यदापूपानास्ति दण्डस्तु मूषिकैर्भक्षितोवर्त्तते
 तत्र यथा मूषिकस्य दुष्करदण्डभक्षणसिद्धौ तत्सहचरिता
 पृथग्भक्षणमपि सिद्ध्यति तथैकस्याप्रभुत्वे सिद्धे युगनद्ववाहि
 त्नादपरयोरप्यप्रभुत्वं सिद्ध्यतीति समुदायार्थः । न्यायमूल
 कत्वात्प्रायिकत्वेनान्यथाप्याह ॥ ० ॥

यदि पुनः सर्व्वस्यावरादिविक्रयमन्तरेण कुटुम्ब
 वर्त्तनमेव न भवति तदा सर्व्वस्यापि विक्रय
 णादिकं इत्यर्थात्सिद्ध्यति ।

सर्व्वतएवात्मानं गोपायीतेति वचनात् ।

नच स्थावरस्य समस्तस्य गात्रसाधारणस्य
 च । नैकः कुर्यात्क्रयं दानमपरस्परमतं विना ।
 विभक्ताअविभक्तावा सर्पिण्डाः स्थावरे समाः एके
 ह्यनीशः सर्व्वत्र दानाधमनविक्रये । एतद्भास
 वचनद्वयेन एकस्य विक्रयाद्यनधिकारइतिवाच्यम्
 यथेष्टविनियोगार्हत्वलक्षणस्य स्वत्वस्य द्रव्यान्तर

इवात्राप्यविशेषात् । व्यासवचनन्तु स्वामित्वेन
दुर्वृत्तपुरुषगोचरविक्रयदानादिना कुटुम्बविरो
धात् अधर्मभागिताज्ञापनार्थं निषेधरूपं नतु
विक्रयाद्यनिष्यत्त्यर्थः ।

एवञ्च स्थावरं द्विपदञ्चैव यद्यपि स्वयमर्जितम्
असम्भूय स्तुतान्सर्वान्न दानन्न च विक्रयः । इत्येव
मादिकन्तदप्येव मेव वर्णनीयम् ॥ ० ॥

यदि पुनरिति कुटुम्बवर्त्तनरूपस्य हेतोरविशेषादित्या
शयः । अर्थात्कुटुम्बस्यावश्यं भर्त्तव्यत्वरूपात् । एवञ्च यत्र
भूम्यादिकं नास्ति मण्डादिरेवास्ति तत्र न सर्वव्यये प्रभुत्वं
हेतोरविशेषात्तत्रप्रभुत्ववचनन्तुभयसद्भावविषयमिति द्रष्टव्यम्
सर्वतदिति । तथाच पोष्यवर्गस्यैवात्मनोऽपि रक्षार्थं कृतः
सर्वविक्रयः कुटुम्बविरोधेऽपि सिद्ध्यतीति द्रष्टव्यम् । अत्र
दायादानुमतिं विना न दानमिद्विः कृतमपि दानन्दानाभा
यतया निवर्त्तनीयमिति चण्डेश्वरमतमपाकर्त्तुं शक्नोते ।
नचेति । कथम्विक्रयं । विभक्ताप्रविभक्तावेति । तथाच स्थावर
स्येति वचनस्याविभक्तस्थावरमात्रविषयकत्वमसम्भवतीतिभावः
नच विभक्तपदद्वयान्तरविभक्तपरं स्थावरपदञ्चाविभक्तस्था
वरपरं अतो नानुपपत्तिरिति वाच्यं । तथासति एकस्यास्या

स्वादनधिकारस्तु द्रव्यान्तरेऽप्यविशिष्टत्वात् । स्वावरोपा
दानवैद्यस्यापत्तेरतोविभक्तस्वावरे वाचनिकोऽयं निषेधोनयौ
क्विक्रदति । अविभक्तावेति वाच्यम् इदमर्थः । वाच्यादिकस्योप
मयोरेवार्थे च समुच्चये इति विशेषोक्तेः । अत्र स्वावरे । तथा च
विभक्तस्यैवाविभक्तस्वावरस्यापि स्वामिहृतदानादिविज्ञात्येव ।
अक्षपातादिना पश्चादंशपरिचयसम्भवादिति भावः यद्यपि
स्वयमर्जितमिति स्वयमर्जितं द्विविधम्येतामहमन्येन हतस्य
स्वात्तदुद्धृतं स्वयम्नाऽर्जितमविशेषात्तदुभयमपीत्यर्थः ॥ ० ॥

तथाहि कर्त्तव्यपदमवश्यमत्राध्याहार्यम् । तेन
दानविक्रयकर्त्तव्यतानिषेधात् । तत्करणत्
विध्यतिक्रमोभवति नतु दानाद्यनिव्यक्तिः ।
वचनशतेनापि वस्तुनोऽन्यथाकरणाशक्तेः ।

अतएव नारदः । यद्येकजातावहवः पृथग्धर्माः
पृथक्क्रिया । पृथक्कर्मगुणोपेतान चेत्कार्येषु
संमताः । स्वभागान् यदि दद्युस्ते विक्रीणीयुर
द्यापि वा । कुर्युर्यथेष्टन्तत्सर्वमीशास्ते स्वधनस्य वै ।
प्रकृतमनुसरामः ॥ ० ॥

निषेधरूपत्वे हेतुमाह । तथा हीति । अवस्थमिति । नच
 सिद्ध्यति सम्भवतीत्येवं कुतोमाध्याह्नियते तथात्वे क्लाम्नेन सह
 समानकर्तृकत्वानुपपत्तिरिति भावः । अथाऽयं दानविक्रय
 निषेधो नादृष्टार्थकः किन्तु स्वत्वध्वंसानुत्पत्तिरूपदृष्टप्रयोज
 नकः दृष्टार्थत्वसम्भवेऽदृष्टार्थत्वकल्पनाया अन्याय्यत्वात् इत्यञ्च
 विशिष्यस्यावरदानादौ दायादानुमतेरपि सहकारिता कल्पत
 इति मैवं कृत्रकारणादेव स्वाभ्यादानादिनिर्वाहेऽतिरिक्त
 कारणकल्पने गौरवात् । अतएवादृष्टकल्पनाऽपि नदूषणा
 वहा प्राभाणिकत्वादिति । अतएवेति । यतो दानादिनि
 प्यत्तिरतएवेत्यर्थः । एकजाता इति । धर्मोऽगौचन्द्रशदा
 दशरात्रादि । क्रिया याजनादि । कर्म तपः शौर्यादि ।
 गुणोऽदुचण्डत्वादिः तथाच विभिन्नजातीयमाहका इत्यर्थः
 कार्येषु एकैकक्रियमाणदानादिषु न सम्भताः । यदि दद्यु
 रिति सदृत्तगोचरदानादिविषयोऽयं निषेधस्तु दुर्दृत्तगोचर
 इति विभाज्यं । कुर्युरिति तथाचासम्भत्यापि दानादिसिद्ध्य
 नोति स्फुटमुक्तमिति । इत्यञ्च स्यावरादावनापदि सर्वे
 दानविक्रयनिषेधोऽयं मण्णाद्यपेक्षया विशेषो बोध्यः । एतस्य
 स्वार्जितविषयत्वे तु वचनवैयर्थ्यापातादिति । प्रकृतमिति ।
 न पितामहधने पित्रा सह तुल्यांशित्वं न वापौ चेच्छ्रया विभा
 ग इति प्रकृतमित्यर्थः । एतदेव विशिष्यव्यवस्थापनेनानुसरा
 म इत्यर्थः । व्यवस्थापितवचनार्थमुपसंहरति ॥ ० ॥

तदेव मुक्तप्रबन्धेन पितामहादिधने पिता
 पुत्रयोः समभागविधानानुपपत्तेः । पुत्राणां
 विभागे स्वातन्त्र्यप्रतिपत्तिपरत्वाभावाच्च जनके
 च्छाधीनं न्यूनाधिकविभागनिराकरणार्थं मृत
 पितृकस्य भ्रातुः पुत्रस्य पितृव्येन सह तुल्याधि
 कारार्थं वा वचनम् । एवञ्च पितामहधनस्यापि
 पितुरिच्छयैव विभागः कार्यः । किन्तु । मातुर्नि
 वृत्ते रजसीति विशेषः । स्त्रोपात्ते तु रजोनिवृत्ति
 सन्तरेणापि पितुरुर्द्धमिति त्वभयचाप्यविशिष्टम् ।
 तेन पैतामहधनेपि कालद्वयं तत्र यदापितैवेच्छा
 तः पुत्रान् विभजति तदा पैतामहधनाद्भागद्वयं
 स्वयं गृह्णीयात् ।

जीवहिभागे तु पिता गृह्णीतांशद्वयं स्वयम् ।
 इति वृहस्पतिना । द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्ना
 त्मनः पितेति नारदेन चाविशेषेण प्रतिपाद
 नात् ॥ ० ॥

तदेवमिति समविभागानुपपत्तेर्वक्ष्यमाणहेतोः । पुत्राणां
 चेत्यादिचोक्तहेतोर्मुक्तप्रबन्धेन जनकेच्छाधीनेत्याद्यर्थवचन

मित्यर्थः स्तुतिपिटकस्येति । वाकारोऽनास्थायां अन्यथा भूमिनिबन्धनादावेव पिटव्येन सह तुल्यांशिता स्यात् । मणि मुक्तादिद्रव्यान्तरञ्च सर्व्वे पिटव्यस्यैव स्यादिति । तस्मात्पुत्राधि कविभागनिराकरणार्थमिति पूर्व्वकल्पएव साधीयानिति । एवञ्च पुत्राणां विभागस्यातव्याभावाच्च पितामहधनविभाग कालमुपसंहरति । तेनेति । कालद्वयमिति मरणदिना पितृ स्वत्वापगमः निवृत्ते मातृरजसि पितुरिच्छेति कालद्वयमि त्यर्थः । वस्तु तस्तु पैतामहे स्त्रार्जितेवा पितृस्वत्वापगमकाल एकएव विभागस्य विशेषस्तु पितामहधनविभागे मातृरजा निवृत्तिकालस्य सहकारित्वमिति बोध्यम् । पितृकृतविभागे ऽपि तस्योपेक्षया पुत्राणां स्वांशे स्वत्वावगमादन्यथा धितृ स्वत्वे विद्यमाने पुत्राणां प्रागुत्पन्नस्वत्वाभावात्तद्वने दाय त्वस्य विभागस्य चानुपपत्तेरिति भाव्यम् । ननु वचने पिता महपदाश्रवणात्कथन्तद्वनविषयत्वमतश्चाह । अविशेषे स्त्रार्जितधनपितामहधनं वा विशेषतोऽनुपादानादित्यर्थः तथाच स्त्रार्जितधनविषयत्वे विष्णुवचनविरोधात्पितामह धनविषयत्वमेवास्य वचनस्येति भावः । ननु भूर्य्येत्यादिवचन विरोधात् । पितृधनविषयत्वमेव कुतो न स्यात् । तथाच सति पितामहधने पितापुत्रयोस्तुल्यांशितैव युक्तं चेन्न विष्णुवचन विरोधस्य जागरूकत्वात् वचनविधिमुक्तायुक्तिमयाह ॥०॥

किञ्च । इतोपि पितामहधनात्पितुर्भागद्वयम् ।
 ज्येष्ठस्य विंशउद्धारः सर्वद्रव्याच्चयद्वयम् ।
 ततोर्द्ध्वं मध्यमस्य स्यात्तुरीयन्तु यद्वीयसः । तथा ।
 एवं समुद्धृतोद्दारे समानं शान्प्रकल्पयेत् । उद्दारेऽ
 नुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना । एकाधिकं हरे
 ज्येष्ठः पुत्रोर्द्ध्वं ततोनुजः । अंशमंशं यवीयांस इति
 धर्मो व्यवस्थितः । एतैर्मनुवचनैः सर्वद्रव्यवर
 सद्धितविंशतदर्द्धतत्तुरीयोद्दारा दर्शिताः । तथा
 एकांशाधिकार्द्धांशाधिकचतुर्थभागाधिकभागाः प्र
 तिपादिताः ॥ ० ॥

किञ्चेति । अथ वा ननु तस्य स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे इति
 विष्णुवचनस्य पुत्रेभ्योन्यूनाधिकदाने स्वेच्छा इत्येवार्थ
 इति विभागे तु तस्य स्वापत्ते तु ज्ञाशिलमुक्तवचनाभ्यां पैता
 महे तु भूयैत्यादिबचनस्य यथा श्रुतार्थानुरोधात्तुल्यांशितैव
 न्यूनाधिकविभागनिषेधपरत्वे लक्षणापत्तिरतो युक्तिश्रमाय
 यति किञ्चेति । इत इति । वक्ष्यमाणप्रबन्धयुक्तेरित्यर्थः विंशः
 विंशतेः पूरणः उद्ध्रियते साधारणधनाद्विभाज्यते इत्यु
 द्धारः परं श्रेष्ठं यत्किञ्चित् भूरक्षादिकं । एवञ्च ज्येष्ठस्य
 दशमभागं न्यायवृत्तस्य दापयेदिति देवत्ववचनं विशेषोद्घा

रार्हापेक्षया ज्येष्ठस्यातिशयगुणवत्त्वे बोध्यम् । मध्यमशब्देऽपि
ज्येष्ठानन्तरजपरः । तदनुजाश्च सर्व्वेयवीथः पदार्थाज्जपर
वचनेऽध्यर्द्धं ततोऽनुजदत्तमभिधानात् । अंशमंशं यवीथश्च
इतिवीथ्यावलाप्तेति बोध्यं । उद्धारेऽनुद्धृते इति सोदर
मात्रक्रियमाणविभागद्वयार्थः सोदरासोदरविभागेतु विंशो
द्धारादिकमेव एतच्च सोदरासोदराभिप्रायकं कल्पद्वयं
विद्यादिगुणवतां ज्येष्ठादीनामिति वक्ष्यते । एकाधिकमिति
एकमधिकभागस्तेन भागद्वयमित्यर्थः । अर्धार्द्धमिति । अधि
अधिकं अर्द्धं तेनार्द्धाधिकमेकभागं अंशमंशमित्यत्राप्यधिक
पदार्थान्वयः । तेन पादव्यादमधिकं तथाच सपादैकभावं
मित्यर्थः ॥ ० ॥

गौतमेनापि विंशतिभागोज्येष्ठस्य मिथुनमुभ
यतोदयुक्तोरथोगोवृषः । मिथुनमजादीनां उभय
तोदत्तश्चादि तद्युक्तोरथः गायुक्तोवृषः एतत्सर्व्वं
ज्येष्ठस्य । तथा ।

काणखोरकूटवण्डामध्यमस्थानेकश्चेत् खोरो
वृद्धः कूटोवामनाकृतिः । वण्डोविकृतत्वाङ्गूलः
एते मध्यमस्य यदि बहवोभवन्ति पशवः ।
तथा । अविर्द्धान्यायसी यश्चमनोयुक्तं चतुष्पदाच्चै

कैर्क यवीयसः सममितरत् सर्व्व । अविप्रभृतयः
 कनीयसः । अवशिष्टं सर्व्वं समं विभजेरन्निति
 प्रतिपाद्य । द्वांशीवा पूर्व्वजः स्यादेकैकमितरेषामिति
 सूत्रेणांशद्वयं ज्येष्ठस्योक्तम् । नचोपार्जकत्वेन ज्येष्ठ
 स्यांशद्वयमिति वाच्यम् । उद्दारेऽनुद्धृते भागद्वयस्य
 विधानात् । अर्जकत्वे चोद्धारस्याशम्भवात् ॥ ० ॥

मिथुनं स्त्रीपुंषौ तौ च पशुप्रस्तावौ पशूनामेव । तच्च गोः
 दृष्टगुपादानादाह । अजादीनामिति । आदिना मेषादि
 संघः । ननु गोवृषद्वयं न दन्दसम्भवः समाहारपक्षे
 पुंस्त्रिङ्गानुपपत्तेः इतरेतरपक्षे एकवचनानुपपत्तेश्चेत्यत आह ।
 गोयुक्त इति । तथाच मध्यपदलोपि समासाश्रयणेन तत् पदं
 बाधुना च दन्द इति भावः । अनेकाद्येदित्यनेन तेन तेषामेकत्वे
 ज्येष्ठप्राप्योद्धारानुरूपमेव कल्प्यं । अत्र ज्येष्ठस्यापि समूक्त
 विशेषोद्धारतैव । गोतमेन मनुवचनादधिकमुक्तमदत्यन्तगुण
 वत्त्वे बोध्यम् । एकैकमितरेषामित्यपि तेषां तिर्गुणत्वे बोध्यम् ।
 दृष्टमिति पिचवस्थानातिरिक्तदृष्टमित्यर्थः । दृष्टं यवीयसोऽ
 न्यत्र पितुरवस्थानादिति शङ्खवचनात्पूर्व्वजस्य द्वांशित्वाभि
 धानस्य ज्येष्ठताप्रयुक्तद्वित्वजर्जकप्रयुक्तमेवेत्याशङ्कते । नचेति
 उद्धारस्याशम्भवादिति । अत्रायमावः । उद्दारेऽनुद्धृते इत्य

नेन यत्र विषये उद्धारप्रयत्नित्वेव विषये भागद्वयविधानं
उद्धारश्च ज्येष्ठपुत्रस्कारेणैव मुत्तान् त्वर्जकत्वेनेति । यद्यपि
उद्धारः सोदरासोदरविषयः श्रृंगदिकन्तु सोदरमात्र
विषय इत्यस्ति विषयभेदः तथापि ज्येष्ठपुत्रस्कारेणैव उद्धार
विधानात् । सोदरमात्र विभागेऽपि ज्येष्ठस्य तत्प्रयत्नित्वेऽस्ती
त्याशयः ॥ ० ॥

मध्यमकनीयसोऽप्योपार्जकतया ज्येष्ठेनाप्यवि
शेषान्तयोरध्यर्द्धादिविधानानुपपत्तेः । ज्येष्ठपदा
नर्थक्याच्च । अतएव पुत्रिकौरसयोः पितृधन
विभागे ।

मनुरग्नि । पुत्रिकायां कृतायान्तु यदि पुत्रेण
जायते । समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि
स्त्रियाः । इति स्त्रीत्वेन ज्येष्ठत्वाभावात् समभाग
ताम्रतिपादयन् पुरुषस्य भागद्वयम्रतिपाद
यति ॥ ० ॥

ननुद्दारेऽनुद्भूते इत्यनेन उद्धारार्हविषये श्रृंगिलस्यविधी
यते उद्धारश्रृंगिलयोरसोदरसोदरविषयत्वेन भिन्नविषयत्वा
त्किन्तु भ्रष्टतिग्रथाभावेनोद्धारभावेन समभागवोधकत्वात्

नारदस्यादितया समभागमर्थतः सुखदित्यार्जकत्वेनैव श्रुति
ममभिधीयते । तथाविधविषयत्वे श्रुतिमत्त्वात्तन्मायभाववृत्ति
कत्वादत आह । मध्यमकनीयस्येति । अधर्द्धादिति । अधि
कार्द्धाधिकपादविधानेत्यर्थः । तयोरधर्द्धादिभागस्य वाच
निकत्वे तदृष्टकल्पमागौरवमिति भावः । ननु सर्व्वसार्जकत्वे
नैव श्रुतिमत् । मध्यमकनीयस्येति अधर्द्धादिविधानम् । अर्ज
नस्यास्पात्यतरत्वादिनाऽप्युपपन्नम् । न बाधकमत आह ।
ज्येष्ठादिपदंति अर्जकत्वेनैव श्रुतिमत् मध्यमादीनामपि तद
विशिष्टतायास्तर्ज्विद्धत्वात् । ज्येष्ठपदस्यानर्थक्यादिति भावः ।
ज्येष्ठादीत्यादिपदात्पुत्रादिपदमयहः । अतएवेति । यतएव
ज्येष्ठत्वेनैव श्रुतिमत्तएवेत्यर्थः । भागद्वयमिति । ननु ज्येष्ठस्य
विषमभागमेव ज्ञापयति मनुः । वैषम्यस्योद्धारभागेऽपि
सम्भवात्कथं भागद्वयज्ञापनमिति चेन्न । उद्धारस्य भागवै
षम्याप्रयोजकत्वात् । एवं समुद्भूतोद्दारे समानंशान् प्रकल्पये
दिति वचनात् । नचैवं त्रियात्रपिविंशोद्धारः स्यात्तावतापि
समभागसम्भवादिति वाच्यम् । उद्धारस्य ज्येष्ठतुल्यपुरस्कारे
णैव श्रुतेः स्त्रियाश्च तदभावात्तदिदमुक्तं ज्येष्ठतामा
सीति ॥०॥

यदुक्तम् । होलाकाधिकरणे प्राच्यकर्तृकहोला
कानुष्ठानोपपत्तये होलाकाकर्तृक्येति श्रुतिर्कल्पिता ।

सावतैव तदुपपत्तेः नतु प्राच्यादिपदवती
कल्पनागौरवात् । तद्वद्वाप्यर्जकोशद्वयं गृह्णीयां
दिति श्रुतिः कल्पनीया नपुनः पित्रादिपदवतीति
तदयुक्तम् । तत्र प्राच्यकर्तृकस्यानुष्ठानस्यावश्य
कल्पनीयसामान्यश्रुत्यैवोपपत्तेः । नचप्राच्याना
मननुष्ठानार्थप्राच्यपदवती कल्पतामिति वाच्यम्
तेषामननुष्ठानस्यानाचाररूपस्य श्रुतिकल्पनानि
मित्तत्वानुपपत्तेरिति । इह तु मन्वादीनां ज्येष्ठ
पदप्रयोगात्तदुपपत्तये ज्येष्ठपदवत्याएव श्रुतेः
कल्पनार्हत्वादर्जकपदवत्या अवश्यकल्पनीयत्वा
भावात् ज्येष्ठपदवत्याअर्जकपदवत्याश्च कल्पनायां
विशेषप्रमाणाभावात् ॥०॥

यदुक्तमिति । होलाका वसन्तोत्सवविशेषः प्राच्यैः क्लृप्तो
प्राच्यादीत्यादिपदादाक्षिणात्यक्रियमाणकरञ्जार्कपूजारूपो
सवाचारोपपत्तये कल्पनीयश्रुतौ दाक्षिणात्यपदपरिग्रहः ।
न पित्रादीति । तथाच पितुरपि अर्जकत्वे नैव भागद्वयं
बान्धवा तेन तस्मापि स्वार्चितधनएव ह्यंशित्वं बान्धवेति मत
मस्य सामान्यश्रुत्यैवेति प्राच्यादिपदघटितश्रुत्यैवेत्यर्थः
श्रुतिकल्पनानिमित्तत्वेति । आचारस्यैव साधनमित्यनेना

शारस्त्रैव वेदमूलकत्वानिधानात् समनाचारश्चेति भावः
 ननु श्रुतौ प्राच्यपदाप्रवेगेऽप्रामाण्यानामपि तन्माहस्येवान्नद
 करणान्नत्यवाचापत्तिः । आचारस्य नित्यत्वे प्रमाणाभावात् ।
 तदुपपत्तये ज्येष्ठपदसार्थक्याय ज्येष्ठपदवत्यादतिश्रुतेः स्वस
 मानार्थकस्मृतिमूलत्वादिति भावः । तथाचाचारे पदविर
 हात्पदवैयर्थ्यापत्तिरूपबाधकविरहेण सामान्यश्रुतिरेव तत्र
 कल्प्यते । स्मृतौ तु ज्येष्ठपदवैयर्थ्यापत्तिरूपबाधकसत्तात् ।
 न सामान्यश्रुतेः कल्पनमपि तु ज्येष्ठपदवत्याएवेति भावः ।
 अवश्येति । यथा ज्येष्ठपदवत्याश्रयकल्पना न तथा अर्ज
 कपदवत्याश्रयकल्पना शृङ्गीवा पूर्वजः स्नादित्यादावर्ज
 कपदाश्रयणात् । अर्जकोऽङ्गमर्हतीत्यस्य तु निरपेक्षार्जकत्व
 पुरस्कारेणैव श्रुतिकल्पकत्वं तत्र ज्येष्ठपदवत्याश्रयणादिति
 भावः । ननु ज्येष्ठार्जकपदवतीभ्यां श्रुतिभ्यामेकमूलकल्पना
 साधवेन ज्येष्ठार्जकोऽङ्गं गृहीयात् । इत्येकैकश्रुतिः कल्प्यते ।
 तावताऽपि ज्येष्ठार्जकत्वपुरस्कारेणैव शृङ्खितमिति सिद्ध
 मेवेत्यत्राह । ज्येष्ठपदवत्यादिति । प्रमाणाभावादिति
 निरपेक्षप्रवृत्तायामेकैकस्मृतौ पदद्वयाश्रयणादिति भावः ॥ • ॥

नचान्यार्जकस्य भागदयार्थं श्रुतेरवश्यं
 कल्पनीयत्वादचापि सैव मूलमस्य साधवात् ज्येष्ठ

सहस्रार्जकपरमस्त्विति वाच्यम् । वैपरीत्यस्यापि
सम्भवात् । अत्रैव ज्येष्ठपदयुक्तश्रुतिकल्पनाया
मर्जकपदस्यापि ज्येष्ठपरत्वकल्पनासम्भवात् । विनि
गमनाप्रमणाभावात् । किञ्चैवं लाघवादिना
यत्किञ्चिच्चतुरादिपदवतीमेकां श्रुतिमनुमाय
सकलस्मृतिपदानां गौण्या लक्षण्या वा वृत्त्या
तत्परत्वमपि वाच्यमित्यतीवात्मनः स्मृतिनिपुणता
निरूपिता । तस्माद्यस्मादेवाचारात् स्मृतिवाक्यादा
या श्रुतिरवश्यं कल्पनीया तथैव तद्गतस्याचारांशस्य
स्मृतिपदस्य च उपपत्तेर्न तत्राधिककल्पनेति चेत्ता
काधिकरणस्यार्थः । अतएव वशिष्ठेन ज्येष्ठस्यांशद्वय
मभिधाय उपार्जकस्याप्यंशद्वयं पृथगभिहितम् ॥०॥

तथाले कनिष्ठार्जकानामङ्गश्रिते सर्वतन्त्रविरोधोऽपि
द्रष्टव्यः । अत्रैवेति । विनिगमनेति । लक्षणाया उभयवाच्य
विब्रिष्टतया तस्यावश्यकत्वनमस्य वेत्येकतरपादकप्रमाणा
भावादित्यर्थः । अथ पितृव्यादीनामपि साधारणोपार्जकत्वे
ङ्गश्रितमुभयवादि सिद्धमित्येतदेव विनिगमकमस्तीत्यत आह ।
किञ्चेति । लाघवादित्यादिना एकत्र विप्रतिपत्तिरन्यत्र उभय
वादिबिदुलरूपविनिगमनाबन्धः । स्मृतिनिपुणतिति । तस्मा

मुख्यार्थस्य प्रथमोपस्थितत्वात् । अथवाच्यं योरवात् । तत्काल-
नाभावाच्च । अन्दाभ्यां मुख्यार्थबोधकत्वस्थितौ कथं लोकादि-
पदानामर्जके साक्ष्यिकत्वसम्भवदति भावः । तर्हि काश्च
न्यायस्य विषय इत्यत्राह । तस्मादिति । अवश्यकस्य नोयेति ।
ग्राह्यादिपदवतीकल्पनेऽपि होलाका कर्तव्येति भागस्यावश्य-
कत्वादिति भावः । आचारांश्च आचारविषयस्य स्मृतिपदस्य
स्मृतिविषयस्य । अतएवेति । यतएव ह्येष्टमर्जकत्वस्य परस्पर-
नैरपेक्ष्येण ह्युचित्यप्रयेजकमत एवेत्यर्थः । पृथगभिहितमिति ।
तथाचैकमुनिवचनयोरेकवचनवैयर्थ्यापत्त्या एकवाक्यत्वात्तन्मा-
त्राच्च तथात्वमिति भावः । पृथगभिधायकतद्वचनमाह ॥ ० ॥

यथा । अथ भ्रातृणां दायविभागोऽष्टांशश्चे-
ष्टोद्धरेत् । ततोऽनतिदूरे पुनराह । येन चैषां समु-
त्पादितं स्यात्सोपि ष्ठांशमेव चरेत् । अनेनार्जक-
तया भागद्वये दर्शिते ज्येष्ठस्यांशद्वयाभिधान-
मनर्थकं स्यात् । ष्ठांशहरत्वमपि न ज्येष्ठतामात्रेण ।

यदाह वृद्धस्थितिः । जन्मविद्यागुणज्येष्ठोऽष्टांश-
न्दायादभ्यामुयात् । समांशभागिनस्त्वन्ये तेषां
पितृसमस्तुसः । उपार्जकत्वेन भागद्वये जन्मविद्या-
कीर्त्तनमनुपयोगि एतच्च भागद्वयं सोदरमात्र

आहविभागविषयम् । सोदरासोदरविभाग
मोक्षरश्च ज्येष्ठस्य विंशोद्धारः ।

यदाह ब्रूयत्यतिः । समवर्णासु ये जाताः सर्वे
पुत्रादिजन्मनाम् । उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेर
न्नितरे समम् ॥०॥

अथेति । चेति । एषा भागिनां मध्ये येनार्जितं सोऽर्जित
धनात् श्रुतं हरेदित्यर्थः । ज्येष्ठता आदिगर्भप्रभवता । जन्म
विद्येति । यथा चैतद्वचनानुरोधाज्ज्येष्ठस्य जन्मविद्यादि
ज्येष्ठपरत्वावश्यकत्वे कस्यमर्जकपरत्वस्यैव इति भावः । अनु
पयोगीति । तच्चाजन्मस्यैवोपयोगित्वादिति भावः । सोदरा
सोदरेति । उपलक्षणमेतत् । असोदरमात्रविषयोऽपीति
भावम् । उद्धारइति । श्रुतस्थानेऽधिकं चोद्धारः अवि
भक्तद्रव्यात् तस्य पृथगक्रियमाणत्वादिति भावः । समवर्णा
स्त्विति । विषमवर्णासु जातानाञ्च ब्राह्मणादिपुत्राणां क्रमेण
चतुस्त्रिंशकभागित्वमिति वक्ष्यते दिजन्मनामित्यनेन ब्रूयत्य
विंशोद्धारनिवृत्तिः तस्मिन्नुक्त्या च दण्डापूपन्यायात् । श्रुत
स्यापि निवृत्तिः अतएव मनुरपि । ब्रूयत्य तु सर्वेष्वेव नान्या
भार्य्यापदिश्यते । तस्यां जाताः समंशाः स्युर्यदि पुत्रव्रतं
भवेत् । इत्यनेन ब्रूयत्य समंशमेव विदधाति । नच दिजन्मनामि
त्युपादानात् समवर्णास्त्वित्यत्र वक्ष्यमनोपादानाच्च सोदरा

सोदरमात्राणां द्विजन्मनामिवोद्धारविधिः श्रुतिविधिस्तु तदन्वयो
 सोदरमात्राणां द्विजन्मना । सामान्यतः शूद्रधातृणां द्विजन्मेव
 द्विजन्मादिति वाच्यम् । पूर्वोक्तमनुवर्तनेरुद्धारश्रवणोः
 वक्ष्यमाणविषयत्वावसरात् । उद्धारविषये शूद्रे श्रुतिप्रसक्तेः
 वस्तुतस्तु ज्येष्ठशूद्रस्याप्युद्धारोयुक्तः । तस्यापि पुत्राभ्युदयनि
 वर्तकत्वेनाधिकोपकारकत्वात् । अधिकधनसम्पन्नस्याधिको
 पकारनिबन्धनत्वात् । दृष्टस्तत्त्वचने समवर्त्तमानेति विषम
 वर्त्तमानाणां विषमविभागसूचनार्थं । अतएव शूद्रस्य विषम
 वर्त्तमानाभावेन सूचनीयस्य विषमभागस्य तत्रासम्भवात्त
 द्वावृत्त्यर्थं द्विजन्मनामिति कृतम् । नतु शूद्रस्योद्धारनिवृत्त्यर्थं
 युक्तिविरोधात् नच मनुना समानांशभिधानात्तद्विरोधः
 उद्धारस्य भागवैषम्यप्रयोजकत्वात् । यथोक्तम् । उद्धारश्चात्र
 यत्ने दत्ता भजेरक्षितरे सममिति भाव्यम् ॥ ० ॥

सर्वर्णास्तु वस्त्रीषु स्त्रीषु जातानां उद्धारपूर्वक
 विभागश्रुतेर्भागद्वयं सोदरमात्रगोचरमेव सिद्ध्यति
 युक्तञ्चैतत् । सोदरतयाधिकगौरवात् । उद्धारोपि
 दशसु गवादिषु न कार्यः ।

तथामनुः । उद्धारो न दसस्वस्ति सम्यज्जानां
 स्वकर्मसु । यत्किञ्चिदेव देयं स्याज्ज्यायसे मान

वर्द्धनम् । तदेव मुक्तप्रबन्धेन नच ज्येष्ठभातुरेष
पितृघने भागदयं कथं तच्च जनकस्य दानविक्रय
परित्यागक्षमस्य पितामहघनसम्बन्धमूलस्याति
गुरोः पितुरेव स्वपितृघने भागदयं न सम्भवति
जन्मविद्यागुणज्येष्ठदतिवाक्ये नच पितृसमत्वे न
भागदयज्ज्येष्ठस्यातिदिशन् पितुर्भागदयं ज्ञाप
यति ।

बृहस्पतिः । जीवद्भिभागे तुपिता गृह्णीतांशदयं
स्वयमिति सामान्येनांशदयाभिधानादुपदेशोवृ
त्त्यतिना दर्शितः ॥०॥

इतरे सममिति ज्येष्ठस्य सगुणत्वे इतरेषां निर्गुणत्वे
इदम् । तेन माध्यर्द्धादिभागविधिविरोधः । नच द्वांशविधि
र्जन्मविद्यादिज्येष्ठविषयोऽस्य उद्धारविधिस्तदितरस्त्रिवरति
निर्गुणस्यापि उद्धारइति तेन सोदरासोदरसाधारणी व्यवस्था
स्त्विति वाच्यम् । समवर्षास्त्विति वज्रवचनानुपपत्तेः भवन्मते
एकस्यास्त्रातानामपि तथालस्य सिद्धेः । दशस्त्विति । तत्पर्यन्ते
व्यत्यर्थः । स्वकर्मसु सम्यक्ज्ञानमित्यनेन सर्वेषामनुसृत्यगुणवत्त्वं
एव । तदधिकगुणवत्त्वे तु ज्येष्ठस्य तत्रापि विशेषोद्धारइति
पूजामणिः । बृहस्पतिवचनमपि पितुर्द्विगुणत्वे प्रमाणवति

नकीर्त्तयतीति चतिदिशमिति । तेषामिदमवयवमवयव इत्यतिदेशः ।
 कथा पुत्रादिभिः यच्च स्वपितृधनविभागे निजसाधने पितृर्ह्य
 जितम् । तथा ज्येष्ठकापि आद्यविभागे स्वपितृधनं जितमि
 त्त्वयममादिति भावः । सामान्येन स्वार्जितपितृधनाद्यनुकूले
 शास्त्रद्वयाभिधानरूपउपदेशः पितृधनविषयतया दृश्य
 तिमा दर्शितोतिदेशेनेति शेषः । नारदवचनादात्मधनएव
 पितुरंशद्वयमिति ब्रह्मपनेतुं स्वमतसाधकतया तदवतार
 यति ॥ ० ॥

तथा नारदः । द्वावंशौ प्रतिपद्येत विभजन्ना
 त्मनः पिता । समांशद्वारिणी माता पुत्राणां स्थान्मृते
 पतौ । द्रव्यं विभजन् पिता द्वावंशावात्मनो गृही
 यात् । न पुनरात्मनो द्रव्यं विभजन्निति सम्बन्ध
 पूर्वोक्तिविरोधात् । किञ्च । पैतामहधने पितापुत्र
 योः समभागित्वे यावद्वनमितुस्तावदेव पुत्रस्या
 पीति वाच्यम् । नतु यावदेव धनं तावदेव तदेव
 पुत्रस्य मध्यगत्वापत्तेः ॥ ० ॥

तथेति । पूर्वोक्तेति तस्य खेच्छा स्ववन्मपत्तेऽर्थे इति पूर्वो
 क्तविशुद्धयर्थः । स्वयेन वा विभज्य भूविहनादाय वा वसे

दिति सारीशोक्तस्य च विरोधादित्यर्थः । केचित्तु । इतोऽपि
 त्यादि पितामहधनमोचरभामदस्युक्तिविरोधादित्याहुः ।
 तदसत् । पितामहधनमंशिलयुक्तेः पित्रधनस्य ह्यंशित्ववि
 रोधाप्रसक्तेः । पितामहधनेपितापुत्रयोस्तुल्यांशित्वे बाधकम
 प्याह । किञ्चेति । मध्यगत्वापत्तेरिति । मध्यगत्वञ्च उभय
 निरूपितस्त्वदवयवदेकद्रव्यम् । अथैवमितरि कृते सत्याम्ना
 तरि विमातरि वा पुत्राणां स्वत्वानुदयः स्यात् । मात्रादि
 स्वत्वस्य विरोधिनः सत्त्वात् । नच पितृमरणादेव तासां स्वत्व
 नाग्रेऽन्यमरणस्यान्यस्वत्वनाशवत्त्वे प्रमाणाभावात् । नचो
 भयनिरूपितस्त्वत्वं व्यासव्यवृत्त्येकमेव स्वत्वमनियोगिनाशा
 देव नश्यतीति वाच्यम् । तथा सति पत्न्यां मृतायान्तकृते
 पत्युः स्वत्वनाशप्रसङ्गात् । मातृधनान्तरदेव तत्पुत्रकन्यादी
 नामधिकारप्रसङ्गात् । किञ्च । पत्न्यां जीवन्यां स्रधनस्य पर
 स्वत्वेन निर्णीतस्य विनियोगे प्रतिक्षणं पत्युः स्यादिति चेन्मै
 वम् । पितृमरणानन्तरमुत्राधिकारप्रतिपादकशास्त्रस्यैव
 पतिमरणात् पत्नीस्वत्वनाग्रे प्रमाद्यत्वात् । अतएव पुण्यापुण्य
 फले समेत्यपि सङ्गच्छते । अन्यथा पत्न्याः पतिधर्मे स्वत्वा
 भावे तदनुपपत्तेरित्यादि सुधीभिर्भाव्यम् ॥ ० ॥

जायापत्योरिव विभागाभावप्रसङ्गात् । एवञ्च
 सति भ्रातृणां विभागे यदा ज्येष्ठस्य ज्येष्ठतया

भागद्वयकल्पनत्वात् तत्पुत्रस्यापि भागद्वयकल्पने
पुत्रेण सह ज्येष्ठस्य चत्वारोऽंशाः भागद्वयस्यैकोऽंशः
स्यात् । बह्वपुत्रस्य च ज्येष्ठस्य तत्पुत्राणामित्यस्य
भागकल्पने कनिष्ठभातुर्येत्किञ्चिदेव स्यादिति
महाजनविरोधः । यच्च वृद्धस्यतिवचनम् ।

द्रव्ये पितामहोपाप्ते स्थावरे जङ्गमे तथा ।
सममंशित्वमाख्यातमित्युः पुत्रस्य चैव हि । अंशित्वं
समं समानम् । न च स्वेच्छया उपोपात्तधनवन्नूप
नाधिकविभागं दातुमर्हति । न पुनरंशः सम इति
तस्यार्थः । द्विपितृकपित्रिभिर्प्रायस्त्वा समभागवच
नम् । तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यमिति वचनन्तु प्रागेव
व्याख्यातम् ॥ ० ॥

विभागाभावेति । यच्चैव पितुः स्वतन्त्रचैव पुत्रस्यापीत्यभ्युप
गमे विभागानन्तरमपि तदवधारणात् । वैभेदिकव्यवहारान
र्हताणां सादृश्यस्यादिति भावः । बह्वपुत्रस्येति । पूर्व्वे बह्वपुत्रा
पुत्रभावाद्द्वयविभागे तत्पुत्रस्यापि भागद्वयेतावन्मात्रमुक्तम् ।
इह तु कनिष्ठस्याल्पप्राप्तिरिति विभेदात्पुनरुक्तिः । यचेति ।
जङ्गमोद्विपद एव । स्थावरसाहचर्यात् । समानमिति । समान
मेवेत्यर्थः । सप्तचक्रमाह । नचेति । मत्पुत्रस्यैव ।

सर्वथात्रवैमन्यान्मिथ्यभिप्रायेणाह । दिपिदकेति ।
 अथैकपुत्रः सादितिर्वक्ष्यमाणं ब्रह्मवचनामुरोधादितिभावः ।
 कृतामश्नुत तस्मात्तद्व्यक्तं भूर्य्यापितामहोपात्ता इत्यनेनैक
 वाक्यत्वादिति वहेतुकं व्याख्याय । ननु अंशित्वस्यांशानतिरिक्त
 तथा कथमंशित्वसाम्यंशवैषम्यम् । तथाच स्थावरजङ्गमपदस्यो
 पसङ्गणतया द्रव्यसामान्यपदणात् कुतोभूर्य्येत्यादिनैकवाक्यत्वं
 सम्भवइत्यत आह । दिपिदकेतीत्याह । तदयुक्तम् । वक्ष्य
 माणमिद्वान्ते भूर्य्येत्यादिना तस्य वचनस्य तुल्यविषयताया
 वक्ष्यमाणत्वात् । उक्तव्याख्येयैव सामञ्जस्येन । पितामहधने
 पितुर्द्विशित्वे प्रकृते युक्तान्तरमाह ॥०॥

किञ्च । यद्यसौ पिता स्वपितुः पुत्रामनरकनि
 वर्त्तकोज्येष्ठस्तदा तस्य स्वभ्रातृनेवापेक्ष्य यत्र पितृ
 समत्वेन भागद्वयं सुंतरान्तस्य पुत्रापेक्षया भाग
 द्वयं युक्तं पुत्राणां क्रमागतधनसम्बन्धस्य पित्रधी
 नत्वात् । अथ यः पितुर्न ज्येष्ठः पुत्रस्तस्य स्वपुत्रैः
 सह समांशतोच्यते । तन्न मध्यमादिपुत्राणामप्य
 धर्द्वादिविधानात् । पितृतया भागद्वयस्यैव सुतरां
 युक्तत्वात् । सामान्येन च पितापुत्रयोः समांशा
 भिधानस्य भवतोमुनीनां चानुचितत्वात् । किञ्च ।

पितुरग्रदयाभिधानं स्त्रोपात्तद्रव्यगोचरमित्यथ न
पपन्नं । तदिच्छानुरोधित्वादिभागस्य इच्छातश्च
भागद्वयत्रयन्यूनाधिकानामपि प्राप्तेर्विफलोपिधिः
नियमार्थत्वञ्च वचनस्य नवर्णनीयम् । विष्णुविरो
धात्तदाह ।

पिता चेत्पुत्रान् विभजेत्तस्य स्वेच्छा खयमुपा
त्तेऽर्थे पैतामहे तु पिता पुत्रयोस्तुल्यं स्वाम्यं । अस्यार्थः
स्त्रोपात्ते यावदेव गृहीतुमिच्छति अर्द्धं भागद्वयन्त
यं वा तत्सर्वन्तस्य शास्त्रानुमतम् । न तु पैतामहेऽपि ।

तथा च दारीतः । जीवन्नेव वा पुत्रान् प्रविभज्य
वनमाश्रयेत् । वृद्धाश्रमं वागच्छेत् । स्वर्णेन वा
विभज्य भूयिष्ठमादाय वसेत् । यद्युपदस्येत् पुनस्ते
भ्योगृहीयात् । अनेन स्वर्णस्य विभागो भूयिष्ठद्रव्य
स्य ग्रहणञ्च पितुरभिहितम् । वृद्धाश्रमः प्रव्रज्या ॥ ७ ॥

किञ्चेति । ननु उक्तवृत्त्या नरकनिवारकर्तुं चैव
पुत्रस्य पितुः पैतामहधने शुभितं तदकर्तुं च कनिष्ठपुत्रस्य
पितुः साहने पुत्रैः सह समाश्रितास्तु वचनार्थं यामश्नन्त्यादि
त्याशङ्कते । अथेति । अथमादिपुत्राणामेव यार्द्धाभिवि
षयताहारकत्वं यत्र तत्र ततो न्यूनस्य एकाग्रमात्रस्य पितुः

पितृत्वस्यैव विज्ञात् भगवद्वचनेव युक्तमिति भावः । अनुवेत्त
महे पितापुत्रयोश्च साधारित्वमेवोच्यते । तथाच ग्राह
न्यात् । ज्येष्ठेनैव पितुः समसाधारिता भविष्यति । तत्कथं
न्यूनत्वमत आह । सामान्येनेति । सामान्येन सममंशितमित्यादौ
अविशेषेणेत्यर्थः । अनुचितत्वादिति । तथाचैकपुत्रस्य
पितुर्द्विगुणितम् । द्विपितृकस्य तु चेचजादेः पितुस्य समंशितमित्ये
वोचितमिति भावः । पितुरंशद्वयविधानस्य स्त्रीपात्तविषयत्वा
सम्भवात् । पितामहधनविषयत्वमेवेत्याह । किञ्चेति । उपद
स्येत् भुक्तसर्वधनं स्यात् ॥ ० ॥

यच्च शङ्कल्लिखितवचनम् । स यद्येकपुत्रः स्यात्
द्वौ भागावात्मनः कुर्यात् । अस्यायमर्थः । एकस्य
पुत्रः एकपुत्रः । न पुनरेकएव पुत्रोयस्य इति वज्र
ब्रीहिः । तस्यान्यपदार्थप्रधानत्वेन पृथीतत्पुषादुर्ध्व
लत्वात् । एकपुत्रश्चौरसः । तथा विधस्य पितुर्भाग
द्वयम् । नतु चेचजस्य पितृत्वेपि तत्र स्यात्सदृशं
स्वास्थ्यमिति वचनं । चेचजपित्रभिप्रायमेव वर्ण
नीयम् । चेचजोहि द्विपितृकः ।

तदाह बौधायनः । मृतस्य च प्रकृतोयः
स्त्रीवस्य व्याधितस्य वा । अन्येनानुमतोवा स्यात्

सोऽपि शेवजः कृतः । स ह्यपि द्विपित्तकोदितोऽपि
 द्वयोरपि स्वभाकरोरिव भाग्यवति । अथार्थः ।
 स्त्रीवादेः स्त्री चेत्तदनुमतोऽन्येन प्रकृतः शेवजः ।
 तथा नारदः । शेविकानुमते शेवे वीजं यस्य प्रकी-
 र्यते । तदपत्यं द्वयोरेव वीजिशेविकयोर्मतम् ॥ ० ॥

भागद्वयवचनं स यथैकपुत्रः स्यादित्यनेनैकमूलतया एक-
 पुत्रकपित्तविषयमिति मतमपाकर्तुं न दशनमन्यथा स्या-
 त्मुत्थापयति । यचेति दुर्बलत्वादिति । एकदेशलक्षणा-
 येष्वपि समुदाये लक्षणागौरवप्रसङ्गादिति केचित् । तदसत् ।
 समुदाये प्रत्यभावे न लक्षणाया अप्रसङ्गे । वस्तुतस्तु तत्पुरुषे
 उत्तरपदं मुख्यमेव पूर्वपदन्तु सम्बन्धिनि साक्षणिकम्वज्ज-
 ङीहो द्वयोरेव पदयोर्मुख्यार्थत्वात् । तदपेक्षया दुर्बलत्वमिति
 चौरस्यपि पितुर्भागद्वये शेवजस्य पुत्रस्य सह तुल्यमित्य-
 स्तितौ तद्विषयतया सहस्रं स्यान्वमिति वचनस्य मुख्यत्वसम्भवे
 न्यूनाधिकविभागनिषेधेन लक्षणा अन्यायेत्यभिप्रेत्याह ।
 तच्च स्यादिति । द्विपित्तकमाह । शेवजोऽपीति । मृतस्य चेति
 स्त्रीचेनेऽन्येन प्रसृतज्यादितः स्त्रीवादेः शेवे वा तदनुमतोऽ-
 न्येनोत्पादित इत्यर्थः । अथैकपुत्रोद्देशेन भागद्वयविधानात् ।
 एवमिव वचनम् । यथैकवचनं सहेष्यविशेषवचनं वा एकपुत्र-

तद्विशेषमविवक्षितम् । किन्तु । यद्यप्यत्राप्युक्तमात्रं यतः
सर्वेषामेव भागद्वयमित्याशङ्क्यम् ॥ • ॥

अतश्चैकपुत्रआत्मनोभागद्वयं कुर्यादिति
विधौ एकपुत्रत्वस्य कर्तृविशेषणतया विवक्षार्थं
त्वात् । उद्देश्यविशेषणत्वे नाविवक्षितत्वमित्यपि
परास्तम्भवति । किञ्च । परमप्रेक्षावन्ननुगौतमद-
क्षादिप्रयुक्तपदानाम्प्रतिक्षणमविवक्षामात्रक्षाणः
स्वस्यैव साक्षादविवक्षितत्वं ख्यापयति । तथापुत्रा-
र्जितेऽपि धने पितुरंशद्वयं द्वावंशाविति । गृहीतां
शद्वयमिति चाविशेषश्रुतेः ।

सुव्यक्तमाह कल्यायनः । द्वांशहरोर्द्वहरोवा
पुत्रवित्तार्जनात्पिता । मातापि पितरि श्रेते पुत्र-
तुल्यांशभागिनी । पुत्रस्य वित्तार्जनात्पितुर्द्वांशहरत्वं
अर्द्धहरत्वं वेत्यस्यार्थः । नच पुत्रश्च वित्तं चेति
पुत्रवित्ते तयोरर्जनात् । पिता द्वांशहरः पुत्रानर्ज-
नात्तु सर्वहरइतिवाच्यम् । अनर्जितपुत्रस्यापि
धात्वभिर्विभागे वित्तार्जकतया अंशद्वयस्येष्टत्वात् ।
कथं सर्वहरत्वम् । अतोविभागार्थसम्बन्धिनि-
विद्यमाने अर्जकस्य द्वांशित्वं असति तु सर्वहरत्वं

साधनम् । तद्यथा पितापुत्रपदयोः प्रत्यक्षमीतता
 स्यात् । किञ्चार्जनं स्वत्वहेतुभूतव्यापारः । अर्जनं
 स्वत्वं नापादयतीति विप्रतिषिद्धमित्यभिधानात् ॥०॥

अतश्चेति कर्तृविशेषणतयेति । एकपुत्रत्वरूपात्मसम्बन्धि
 भागद्वयस्य विधेयतया एकपुत्रत्वं विधेयविशेषणमेव नतद्देश्य
 विशेषणं येनाविवक्षितं स्यादिति भावः । केचित्तु कर्तृराख्यात
 वाच्यत्वेन विधेयतया तद्विशेषणस्यैकपुत्रत्वस्य द्विपिदकया
 वर्त्तकत्वेन प्रयोजनकतया विवक्षितमित्याहुः । साधनातिरि
 क्रधने पितुर्भागद्वययुक्तिदार्ढ्यार्थमाह । तथेति । पुत्रवित्तार्ज
 नादिति । द्वांश्चहरत्वाद्यन्वयानुरोधात् । छद्दिहितोभावोद्वय
 वप्रकाशते इति व्युत्पत्तेः पुत्रार्जितवित्तादित्यर्थः । नचेति
 तथा च पुत्रार्जितवित्तेन वितुर्हीनित्वं येन दृष्टान्तबलात्प्रकृत
 दार्ढ्यं स्यादिति भावः । पितापुत्रयोः पितापुत्रपदयोः ।
 ननु विभागोऽर्थस्य पितृत्वस्य इत्येव पितापुत्रपदं सम्बन्धिभाष्ये
 पल्लवार्थं सामान्यकल्पनायां लाघवस्य मूलत्वादत आह ।
 किञ्चेति । विप्रतिषिद्धं विरुद्धतया अर्जनं स्वत्वमापादये
 दित्यर्थः अभिधानात्प्राप्तेरिति शेषः ॥०॥

नच पुत्रेषु स्वत्वमस्तीति सर्वस्वदानं प्रदर्शितं
 अतस्तत्र गौणमर्जनपदम् । वित्ते च मुख्यम् ।

न चैतद्वद्वत्कृतस्य सम्भवति । न च पुत्रेणार्जितत्वा
पुत्रस्य द्वांशप्राप्तेः पितुश्च भागद्वयस्यास्माद्वचना
इतेपि प्राप्तेः । समभागत्वापातादिधानमनर्थक
मिति वाच्यम् । एतद्वचनमन्तरेणापि पुत्रधने
पितुर्भागद्वयस्याप्राप्तेर्वचनस्यार्थवत्वात् ॥ ० ॥

द्विर्भूतमिति । तत्र पुत्रदाननिषेधस्य खलाभावेन न्याय
मूलत्वादिति भावः । सम्भवतीति । सकृदुचरितशब्दः शक्यदे
वार्थक्यमयतीति न्यायात् धुगपद्वृत्तिद्वयविरोधाच्चेति भावः
तेन न द्वन्द्वमन्तत्पुरुषः सम्भवतीति भावः । द्वांशप्राप्तेरिति ।
अर्जकोद्वांशमाहरेदिति वचनात्पितुर्भागद्वयं शृङ्गीतांशद्वयं
स्यमिति सामान्याभिधानादिति भावः । अनर्थकमिति अर्द्ध
हरत्वाभिधानमनर्थकमित्यर्थः । इदमुपलक्षणव्याप्तिर्दिष्ट
द्वांशहरत्वादाय विद्वद्धार्यकत्वमपि बोध्यम् । भागद्वयस्या
प्राप्तेरिति । द्वांशार्द्धरूपद्विविधभागस्याप्राप्तेर्निश्चयेनाप्राप्ते
रित्यर्थः । तथाच भृत्यार्जितवत्सर्व्वस्यैव स्नाम्याद्भूयिष्ठपदस्य
स्यापि प्राप्तेर्निश्चयार्थं पञ्चदशमुक्तमिति भावः । विद्वद्धार्यक
त्वञ्चैतयोर्विषयभेदस्य वक्ष्यमाणतया निरसनीयमिति । ननु
पुत्रे स्नातमस्यैव अन्यथा विक्रयस्यैव दानस्य न मेयाः स्मर
निषेधः । इतरान् पुत्राञ्च सर्व्वस्वमात्मन्येव निबोधयेत् ।

अन्यत्काशे च कर्तव्यव्याप्तं विकल्पेन च । अन्यथा कर्तव्येति
इति शास्त्रार्थनिश्चयः । इति कात्यायनेन विरोधः स्यादत्र
इव माता पित्रदत्तविक्रीतौ इविमकीतौ मयुरादयः ।
अतु पुत्रदारोपक्रमे नारदेनोक्तम् । आपत्स्यपि च कष्टास्तु
वर्त्तमानेन देहिना । अदेयाश्चाङ्गराचार्याश्चान्यस्यै प्रति
श्रुतमिति तत्पुत्रादीनामनिच्छाविषयमिति न विरोधः ।
न च मन्वादिभिरर्जनगणनमध्ये अपत्योत्पादनस्य गणनात् ।
कुतः पुत्रे स्वत्वं कात्यायनादिवचनस्यैव तस्य स्वत्वहेतुत्वे
प्रमाणत्वात् । सर्वस्वदाने तु वचनबलादेव पुत्रस्यादानम् ।
अतएव स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते । इत्युपपद्यते ।
अन्यथा स्वत्वाभावादेव तदप्राप्तेस्तदनर्थकं स्यात् अत आह ॥१॥

किञ्च पुत्रवित्तार्जनादित्यस्य पितृधनविषयत्वे
पितुरिच्छातोऽङ्गशहरत्वमर्द्धशरत्वमेत्यनुपपन्नम् ।
इच्छानुरोधित्वाद्गृहणस्य इच्छायाश्चानियतत्वा
त्पार्द्धसपादपादोर्नाशशरणस्यापि सम्भवात् ।
कथम्यक्षदयमात्रकीर्त्तनं नियमार्थत्वञ्च पितृध
नगोचरत्वञ्च सम्भवतीत्युक्तम् । अत्र च पुत्रा
र्जितवित्तस्य यथाङ्गशहरत्वमन्यथा तस्यैव वित्तस्या
र्द्धशरत्वमिति युक्तम् । न पुनर्द्धशस्यार्द्धमेकोऽङ्गस्य

इत्यर्थं वचनम् । अर्द्धस्य द्वांशस्य चैकदेशत्वेन
एकदेशस्याभावाच्चित्तत्वात् । पुरुषविशेषस्य तस्याहर
अकर्तृत्वेन च द्वयोः समत्वात् । परस्परसम्बन्धानु
पपत्तेः । वित्तार्जनादिति पञ्चम्यन्तेन द्वांशरूपे
कदेशान्वयार्थोपादानस्याविवादादार्द्धपदेनापि त
स्यान्वयोयुक्तः । वित्तार्जनाद्वैपद्योश्चाव्यवधाना
द्विस्तस्यैवार्द्धं प्रतीयते ॥ ० ॥

किञ्चेति । निधमार्थत्वं पञ्चद्वयनियमार्थत्वमुक्तम् । तस्य
स्वेच्छेति । स्वत्वेन वा विभज्य भूयिष्ठमादाय वसेदित्याभ्या
मिति शेषः । तथा चानपत्यपुत्रार्जितविषयत्वं वचनस्वेति
भावः । एकदेशत्वेन स्वसम्बन्धिकत्वेन । एकदेशस्य सम्बन्धि
सचक्षस्य । ननु तयोः सम्बन्धिसाकाङ्क्षत्वेऽपि द्वांशस्य पुत्रवित्त
रूपसम्बन्धिना अर्द्धस्य तु द्वांशरूपसम्बन्धिना अन्ययोस्त्वित्यत
आह । पुरुषेति । यथाच गुणानाञ्च परार्थत्वादसम्बन्धः
समत्वात्सादिति जैमिन्युक्तन्यायेन । द्वयोर्विशेषकयोः परस्परं
नाम्यसम्बन्धवदतिभावः । वित्तार्जनादिति पञ्चम्यन्तेन द्वांश
रूपैकदेशस्य लोऽन्वयः तदर्थोपादानस्य तदर्थं द्वांशोपादानस्य ।
अविवादात् अवतोऽपि समतत्वात् । अर्द्धपदेनापि तदन्वयो
युक्त इत्यर्थः । द्वांशस्य तु पञ्चम्यन्तानुपस्थित्या तदन्वयोनयुक्त

इति शेषः । पद्यमन्त्रमेवेति यावे । वित्तार्जनादिश्रमणात्
 सितिविद्यन्तः तत्परामर्शसोऽयम् । उपादानेनाश्रयः आश्रयि
 वत्तात् । पद्यमन्त्रेण सः प्रथमं चर्तुस्त्वैवान्मयोवत् इति
 सन्निविष्टत्वादित्याह । वित्तार्जनेति । अत्र चानन्वयिव्यव
 धानाभावस्यैवासन्निवृत्तकनचाहरपुत्रवित्तपदैर्बन्धधामेऽपि
 नाश्रयनपपत्तिरिति शेषम् ॥ ० ॥

न पुनर्द्विंशस्यार्द्धमेकांशः प्रतीयते । स्वायत्ते
 चैकांशपदे प्रयोक्तव्येऽवाचकपदप्रयोगस्यान्याय्य
 त्वादित्तस्यैवार्द्धं युक्तम् । तत्र पितृद्रव्योपघातेन
 पुत्रार्जितवित्तस्यार्द्धं पितुरर्जकस्य पुत्रस्यांशद्वयमि
 तरेषामेकैकांशिता । अनुपघाते तु पितुरंशद्वयं
 अर्जकस्यापि तावदेव इतरेषामनंशित्वम् । यदा ।
 विद्यादिगुणसम्पन्नस्य पितुरर्द्धहरत्वं विद्यादिना
 ज्येष्ठस्यैवाधिकांशदर्शनात् । विद्यादिशून्यस्य जन
 कतामात्रेण द्वंशित्वम् । तेन क्रमागतधनादा
 पुत्रार्जितधनादा भागद्वयमिता स्वयं गृहीयात् ।

अतोऽधिकमिच्छन्नपि नार्हतीति वचनार्थः ।
 स्वार्जितधनात् तावदेव ग्रहीतुमिहति तावदेव
 गृहीयात् । पुत्राणाम् पितामहधनादिशोद्धारं

इत्थत्वेन वा निमज्जेत्सोपाजितधनात्पुनर्गुणव
त्वेन सम्मानार्थं यज्जकुटुम्बत्वेन वा भरणार्थं अयोग्य
त्वेन वा छपया भक्तत्वेन वा प्रसन्नतयाधिकदा
नेऽन्यूनानाधिकविभागं कुर्वन् धर्मकारो पिता ।

तदाह वाचवत्क्यः । न्यूनाधिकविभक्ताना
न्धर्म्यः पित्र हतः स्मृतः ॥०॥

नपुनरिति । तस्मान्मयिना हरदत्यनेन व्यवधानात्पञ्चम
नम्रवशाच्चेति भावः । शृङ्गेणान्वये तात्पर्याभावमाह ।
स्वायत्तइति । अवाचकपदत्वेति । एकाग्रत्वेनावकाङ्क्ष
पदत्वेत्यर्थः । अन्यायत्वादिति । तथाच तदन्वयतात्पर्यं
मितिभावः । शृङ्गार्द्धयोर्विषममिष्टतया विवक्ष्ये विरोधा
शुक्लितविकल्पमाह । तच्चेति । नन्वाप्यर्द्धपर्यवधाने शृङ्गा
भिधानमनर्थकमत आह । यदेति । इदञ्च पितुर्गुणवत्त्वं
निर्गुणवत्त्वाभ्यां अर्द्धहरत्वं शृङ्गहरत्वाभिधानं अग्नित्यनेकस्मिन्
पुत्रे वेदितव्यम् । एकस्मिन्स्वर्जकपुत्रे अग्निनि गुणवति पितरि
शृङ्गित्वं निर्गुणेऽर्द्धमिति वैपरीत्यं नैयायिकं सुधीभिर्भाव्यम् ।
दत्तादत्तावेति । ज्येष्ठं वा अष्टभागेन सर्व्वं वा सुःसमांश्चिनइति
वक्ष्यमाश्रवणादित्याशयः । पितामहधने पितुरिच्छया न्यूना
धिकदाने निरस्ये पितुः स्तार्जितमात्रपर्यवसायिवक्ष्यमाण
न्यूनाधिकविभागकारवत्माह । स्तोपाजितधनादिति । धर्मका

रीति । तथा च उक्ताव्यतमकारणं विना स्वार्जितधने पुत्राणां
विषमविभागेन धर्म्य इति भावः ॥ ० ॥

तथा वृद्धस्यतिः । समन्यूनाधिकाभागाः पित्रा
येषाम्प्रकल्पिताः । तथैव ते पालनीयाविनेयास्तेषु
रन्यथा ।

नारदश्च । पित्रैव तु विभक्ताये समन्यूनाधिकौ
धर्म्यैः । तेषां स एव धर्म्यः स्यात्सर्वस्य हि पिता
प्रभुः । सर्वधनप्रभुत्वस्य हेतुत्वात् । पैतामहे च
तदसम्भवात् । न्यूनाधिकविभागः पितृकृतः पितृ
धनविषय एवायन्धर्म्यः ।

तथाच विष्णुः । पिता चेत्युत्रान्विभजेत्तस्य
स्वेच्छा स्वयमुपात्तेऽर्थे पैतामहे तु पिनापुत्रयो
स्तुल्यं स्वामित्वम् ।

ननु विभागश्चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सु
तान् । ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वास्युः समांशिन
इति याज्ञवल्क्यवचनात् । उद्धाररूपश्रेष्ठभागा
वगतेः कथन्ततो न्यूनाधिकत्वमभिधीयते । उच्यते
उपरते पितरि भ्रातृभिरपि विभागे क्रियमाणे
विंशोद्धाररूपश्रेष्ठांशस्यासिद्धत्वाच्च नानर्थक्यान्
तदर्थत्वम् ॥ ० ॥

विनेषादृष्ट्याः पितृधनविषय एवेति । स्तार्जितधनविषय
एवेत्यर्थः पैतामह इति । यद्यपि पितामहसर्वधनप्रभुत्वमपि
पितुरस्य तमेव तथापि प्रभुत्वमिह न स्तार्जितं किन्तु यथेष्टवि
नियोगयोग्यत्वं सर्वस्मिन् पैतामहे पितुर्न तथात्वमिति
भावः । याज्ञवल्क्यीयं न्यूनाधिकविभागवचनं विभागश्चेत्पिता
कुर्यादिति वचनञ्च स्तार्जिते पितामहधने वा सामान्यत
एव षोडशरूपश्रेष्ठभागविषयमित्यभिप्रायेण शङ्कते ।
नन्विति । श्रेष्ठभागावगतिः समभागावगतेषु । कथमिति ।
तदीयेतद्वचनेनैव तस्य प्राप्तत्वात् विधानानुपपत्तेरिति
भावः । अतएव वैयर्थ्यं स्यादतएव न तदर्थत्वमित्याह ।
उच्यते इति । वचनानर्थक्यादिति । भ्रातृकृतविभागापेक्षया
पितृकृतविशेषविभागे न न्यूनाधिकविभक्तानामिति वचना
नर्थक्यादित्यर्थः । तथाच तद्वचनञ्च षोडशरूपानुड्वाररूपन्यूना
धिकभागबोधकम् । किन्तु पितुरिष्टाकृतस्यैवास्य न्यूनाधि
कविभागस्यैव बोधकमिति भावः । प्रयोजनान्तरप्रदर्शनेन
वचनस्यार्थवत्त्वमाशङ्कते । ॥

अथ विनाप्युद्धारं समांशतायाः पितृकृताया
धर्म्यत्वार्थं वचनमुच्यते । तन्न । न्यूनत्वमेव तर्हि
पितृकृतत्वमर्थं स्यादित्यधिकपदमनर्थकं स्यात् ।

किञ्च । उद्दाराभिप्रायेण समन्यूनाधिकत्ववर्णने
इच्छया विभजेदित्यनर्थकम्यदम् । एतदितरप
दत्रयेणैव वक्तव्यस्याभिहितत्वात् । असम्भते तु
इच्छया विभजेदिति स्वीपात्तधनविषयम् । श्रेष्ठां
शतासमानांशतयोस्तु पैतामहधनगोचरत्वमिति
न किमप्यनर्थकम् ॥ ० ॥

अथेति । धर्म्यत्वार्थमिति । तद्वचनस्य धर्म्यत्वप्रतिपादना
दितिभावः । न्यूनत्वमेवेति । भ्रातृकृतशोडशरापेक्षया पितृ
कृतसमभागस्यैव न्यूनत्वादिति भावः । अधिकपदमिति । शोडश
रूपाधिकभागस्य भ्रातृकृतस्यापि धर्म्यत्वेन पितृकृतविषये
ऽधिकपदोपादानवैयर्थ्यादिति भावः । चूडामणिसु । अधिक
पदमिति । ज्येष्ठस्य विंशउद्दारादत्यनेन सामान्यतएवप्राप्ते
रनर्थकमित्यर्थ इत्याह । अथ पितृकृतसमभागएव शोडशर
भागपेक्षया न्यूनः कभिष्ठानामर्थादधिकोभवतीति सएवै
कोभागोन्यूनाधिकपदाभ्यामुच्यते न पृथगिति नाधिकपदवै
यर्थ्यमत आह । किञ्चेति । वस्तुतोननु समभागमात्राभिधानेन
पितृकृतत्वनिमित्तविशेषाभिधानेन सामान्यप्राप्ताधिकांशबाधा
पक्षिरतोऽधिकपदं शोडशरभागप्रापकतया सार्थकं वाच्यम् ।
तथा सति ज्येष्ठं वा ज्येष्ठभागेनेत्युक्त्याश्रयवत्त्ववचनात्तरं

यर्थः न्यूनाधिकवचनेनैव तदुक्तद्विविधभागावगतेरतोवचनमे
तद्विधान्तराभिप्रायकतया सार्थक्यति । किञ्चेति । अनर्थक
मिति । भागद्वैविध्यभाषाभिधानेन तच्चेष्टायाश्चप्रयोजक
त्वादिति भावः । एतदितरेति । पदं वचनचतुर्थीशः । एतदि
तरपदचयेणैवेति । विभागश्चेत्पिता कुर्यादिति ज्येष्ठं वाश्रेष्ठ
भागनेत्यादिपादचयेण । वक्तव्यस्य भागद्वयरूपस्य । कथं तर्हि
वचनस्यार्थवत्त्वमत आह । अस्मदिति । स्त्रोपात्तविषयमिति ।
पितामहधनपरत्वे वैयर्थ्यापातादिति भावः । न किमपीति ।
न्यूनाधिकवचनस्य स्त्रोपात्तविषयतया विभागश्चेदित्यस्य च
पितामहधनगोचरतया वचनयोरर्थवत्त्वादिति भावः । इदञ्च
न समीचीनमुक्तं दृष्ट्या विभजेदित्यस्य स्वार्जितविषयत्वेनैव
तत्र न्यूनाधिकविभागे सिद्धे न्यूनाधिकवचनवैयर्थ्यात्
वस्थ्यात् । धर्म्यत्वार्थं तत्सार्थक्यं तु पितामहादिधनसामान्य
विषयत्वपक्षेपि समानमिति भाव्यम् ॥ ० ॥

किञ्च । पितर्यपरतेऽपि द्विप्रकारोविभागोवृद्ध
स्यतिनोक्तः ।

यथा । द्विप्रकारोविभागस्तु दायदानां प्रकी
र्तितः । वयोज्येष्ठक्रमेणैकः समापरांशकल्पना ।
ज्येष्ठक्रमेणेत्युद्धारन्दर्शयति । तथा समांशता

परेति । भ्रातृणामपि परस्परविभागस्य द्विविधकार
त्वात् पितृकृतस्य विशेषेण स्यात् ।

तथानारदः । पितैव वा स्वयमुक्तान् विभजेदयसि
स्थितः । ज्येष्ठं वा ज्येष्ठभागेन यथावा स्य मतिर्भवेत् ।
ज्येष्ठस्य ज्येष्ठभागमभिधाय पुनर्यथा वा स्य मतिर्भवे
दित्यनेन यादृशे न्यूनाधिकविभागे पितुः पूर्वोक्त
कारणात्कर्त्तव्यमतिर्भवेदिति पृथगभिधानात्
ज्येष्ठभागादन्येवायं न्यूनाधिकविभागः प्रतीयते ।
यत्पुनर्नारदवचनम् । व्याधितः कुपितश्चैव विषया
सक्तचेतनः । अयथाशास्त्रकारी च न विभागे
पिता प्रभुरिति । तज्ज्ञाधिना आकुलचित्ततया
कस्मिंश्चित्युचे क्रोधादा सुभगापुत्रस्त्रेहादा अयथा
शास्त्रं विभजति तद्विषयम् । पूर्वोक्तकारणात्तु
शास्त्रीय एव विषमविभागः ॥ ० ॥

नन्विच्छया विभजेदिति स्वयाच्छात्रविषयकमेव वाच्यं
स्वकीयं वा विभज्य भूयिष्ठमादाय वा वसेदित्येकमूलकत्वात्
तत्त्वमनर्थकमतश्चाह । किञ्चेति । विशेषेण स्यादिति ।
तथाच वचनवैषम्यतादवस्थान्न तथार्थसम्भव इति भावः
यद्यप्यबन्धोपपन्नतदत्यादिना प्रागेवोक्तस्यैव तस्य दार्ढ्यं

प्रतिपादनार्थमुत्तरभिधानमिति बोध्यम् ननु न्यूनाधिक
वचनस्य सोद्धारानुद्धारभागद्वयनियामकत्वे पित्रा येषा
मिति प्रतीकं व्यर्थं स्यात् । भ्रातृविभागेऽपि द्वैविध्यासत्तात् ।
यतो न्यूनाधिकविभागः सोद्धारानुद्धारभ्यामन्यत्र वेत्यत्र
प्रमाणान्तरमप्याह । तथेति । यादृकेति । एतस्य समं
मात्राभिधायकत्वे विभजेदयसि स्थितइति पूर्वप्रतीकेनैव
समं स्यादश्रुतत्वात् विशेषस्येति न्यायात्समांशप्राप्त्यैवार्थं
स्यादिति भावः । आकुलचित्ततया कर्त्तव्या कर्तव्यविवेचनशून्य
तथा पूर्वोक्तकारणाङ्गकत्ववज्जपोऽसत्त्वादेः कारणादिति
अदुक्तं च प्रमाणमाह ॥ ० ॥

यथा कात्यायनः । जीवद्विभागे तु पिता नैकं
पुत्रं विशेषयेत् । निर्भाजयन्न चैवैकमकस्मात्का
रणं विना । नैकमधिकदानेन विशेषयेत् । न च
निर्भाजयेद्विभागशून्यं कुर्यात् कारणं विना
उद्दाराद्विशेषोऽपि बहूनामेव नैकस्य एकस्यापि
चपुत्रस्य कारणं विना विशेषेण कार्यः । कारण
वशात्तु कार्य एव एकस्यापीत्यवगतेर्नोद्दारापेक्षो
विशेषः । किन्तु पितुरिच्छाकृत एवेति यथोक्त
एवार्थः । यदि पुनः पितरि जीवति पुत्रा एव विभा

गमय्ययन्ते तदा विषमविभागः पित्रा न दातव्यः ।

तदाह मनुः । भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्था
नम्भवेत्सह । न तत्र भागं विषमम्यिता दद्यात्कथ
ञ्चन ॥ ० ॥

ययेति । कारणं विना पूर्वोक्तकारणं विना अन्यस्यासम्भवात् । नैकं पुत्रं विशेषयेदित्यन्वयः निर्भाजयेदित्यत्र कारणं विना पातित्यादिकं विना इत्यस्य गुणं विनेत्येवार्थः । तथाच कारणं गुणं विना न विशेषयेत् । मोद्धारादिना विशेषयेदिति वचनार्थः । तत्कथं पूर्वोक्तकारणत्वाविशेषं ब्रूयेदित्यत्राह । उद्धारादिविशेषोऽस्तीति । बहूनामेवेति । विंशतदर्द्धतत्तुरीय भागरूपानामुद्धाराणां बहुष्वेव उद्दिष्टत्वादितिभावः । नैकस्येति । तथाच एकस्य विशेषेनानुगणकतोद्धाररूपः उद्धारस्य सर्वपुत्रसाधारणतया एकपुत्रस्य विशेषत्वासम्भवात् । किन्तु । कारणान्तरकृतेऽन्यत्र एवेतिभावः । यद्यपि ज्येष्ठस्य सगुणत्वे इतरेषाञ्च निर्गुणत्वे एकस्याप्युद्धारकृतविशेषः सम्भवत्येव । तथापि । सविशेषेन वचनार्थः पित्रुपादानवैयर्थ्यात् । भ्रातृविभागपि तथा विधिविशेषसम्भवादितिबोध्यम् । मनु एकयद्वणात्कारणं विना बहूनां विशेषः स्यादित्याशङ्क्याह । एकस्यापीति । न्यायादव्यवहर्त्तव्यइति भावः ।

इष्टाकृतएवेति । सार्जितमात्रे पूर्वोक्तकारणवहकारेण
इष्टाकृतएवेत्यर्थः । उत्थानं विभागोद्यमः उत्थानमर्जितं
सहयुगपत् । तथाच सर्वेषामर्जितेन विषमविभागदतिकुक्षु
कभट्टव्याख्यानन्तदसत् । तच्च विषमविभागाभावस्य सम
विभागस्य च न्यायतएव प्राप्तेर्वचनानर्थक्यात् ॥ ० ॥

उद्धारस्तु तदा पित्रा दातव्यएव । तस्य विषम
विभागरूपत्वाभावात् । न्यूनाधिकविभागस्यैवनिषे
धादिति पितृकृतोविभागः ।

इदानीमुपरते पितरि भ्रातृणां विभागः
कथ्यते । सोऽपि च मातरि जीवन्त्यां सत्यपि पित्रुपर
माद्वनस्त्रामित्वे धर्म्येन विभागः सोदराणां भवती
तिकथ्यते । ऊर्द्धं पितुश्च मातुष्येति । उभयोरुपर
मे सोदराणां पैतृकधनविभागस्य स्थापनात् । नपु
नर्मातुर्ऊर्द्धं मातृधनविभागार्थमैतकपदात् पितृ
धनमात्रस्यैव विभागावगतेः पैतृकपदस्यैकशेष
कल्पनायां प्रमाणाभावात् । किञ्च । जनन्यां संस्थि
तायामित्यनेनैव मातरि मृतायान्तदीयधनवि
भागस्य मनुना वक्ष्यमाणत्वादूर्द्धं मातुरिति पुन
रुक्तं स्यात् ।

यथा याज्ञवल्क्यः । विभजेरन् सुताः पित्रोर्ह
र्द्धमृक्यमृणं समम् । मातुर्द्वितरः श्रेष्ठमृणा
न्नाभ्यच्छतेऽग्वयः ॥ ० ॥

विषमविभागरूपत्वाभावादिति । एवं समुद्धृतोद्गारे
समानंशान्प्रकल्पयेदित्यादिना अविभक्तद्रव्यात्पृथक्कृतस्यै
वोद्धारतया तस्य भागाभावादिति भावः । इति पितृकृत
विभागः । पितृकृतविभागं निरूप्य भ्रातृकृतविभागनिरूपणार्थं
सखोऽथवाधानायप्रतिजानीते ॥ इदानीमिति ॥ पितृकृत
विभागनिरूपणमन्तरमित्यर्थः । सापि भ्रातृकृतविभागाऽपि ।
धर्म्यानेति । तथाच विभागः सिद्धत्वं क्विन्तु स धर्म्यानेति भावः ।
अतएवाक्तं सत्यपीत्यादिविभागाधिकारज्ञापनार्थम् ।
मन्वेऽग्नितृसत्त्वे इवमाह सत्त्वेऽपि विभागानिद्धेरपि वचनार्थं
त्वसम्भवे धर्म्यत्वेन किमित्यदृष्टकल्पना गौरवमङ्गीकरोषिदिति
चेन्न । तवापितदानीं तेषां न स्वामित्वात् माह सत्त्वे विभागा
भावस्य वाचनिकत्वेनादृष्टकल्पनायास्तुत्यत्वादिनिगमना तुते
षाम्बितृसत्त्वेऽस्वामित्वात् । युक्तविभागासिद्धिः माह सत्त्वे
तु तेषां स्वधनस्वामित्वात् विभागे वाधकाभाव इति न्याय एवेति
विभाच्यं । ज्ञापनान्मनुनेति शेषः । ननु मातुर्हर्द्धमित्यस्य पितृ
धनविषयत्वेऽदृष्टकल्पना गौरवमेव एकशेषकल्पनायां मान

जतञ्चाहकिञ्चेति । पुनरुक्तमिति । इयोरपि मनुवचनत्वादिति भावः । उक्तार्थे याज्ञवल्क्यवचनं स्फुटं प्रमाणयति यथेति ॥०॥

मातृधनविभागस्य दुहितृणां सद्भावे अनधिकारः असद्भावे चान्वयपदेन पुत्राणामधिकार इति उत्तरार्द्धेनैव प्रतिपादनात् । पूर््वार्द्धे पित्रोरिति पितृधनविषयमेव अन्यथा पुनरुक्तत्वापत्तिः । मातापित्रोरुपरमे भ्रातरोविभजेरन्निति वदता याज्ञवल्क्येन उभयोरुपरमानन्तरकालस्य विभागार्थतया विधानात् साहित्यं विवक्षितम् ॥०॥

अनधिकार इति । पुत्राणामिति शेषः पुनरुक्तत्वेऽपि पूर्वाह्णपित्रोरित्यत्रैकशेषकल्पनया मातृधनविभागे मातुरुद्धमिति प्राप्तेः पुनर्मातुर्धनमित्यस्य पुनरुक्तत्वापत्तेरित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । उत्तरार्द्धे दुहितृभावे सुतस्याधिकारप्रतिपादनात् विरोधापि द्रष्टव्यः । अथ पूर्वाह्णमातुरधैतकधनविषयमुत्तरार्द्धे धैतकधनविषयम् । अत्र प्रथमन्दुहितृधिकारस्य वक्ष्यमाणत्वात् । अतो न पौनरुक्त्यं न वा विरोध इति चेन्न । अथैतकस्त्रीधने पुत्रकुमार्योर्युगपदधिकारस्यैव वक्ष्यमाणत्वेन केवलपुत्राधिकारप्रतिपादने विरोधतादवस्थ्यात् ।

नच सुमादत्येकशेषकल्पनया कन्यापुत्रयोर्युगपदधिकार
प्राप्तिरिति वाच्यम् । पितृधनसमभिव्याहारात्केवलपुत्रा
धिकारस्यैवावगतेः अन्यथा पितृधने तयोर्युगपदधिकारा
पत्तिः । साहित्यमिति । पितृमात्रुपरमयोः साहित्यमित्यर्थः
विवक्षितमिति । तद्वचनस्य चकारेण इन्द्रसमानार्थकेन साहि
त्यावगमादिति भावः । अत्र च साहित्यं विभागक्रियापेक्षया
साहित्यन्तुल्यरूपाणां परस्परसापेक्षाणामेकक्रियान्वयित्व
नच तुल्यरूपाणां विशेष्यविशेषणभावोपपन्नानन्तेन सपत्नीको
धर्ममाचरेदित्यत्र साहित्यव्युदासः पत्युर्विशेषणत्वेनैव पत्न्या
आचारक्रियान्वयात्परस्परसापेक्षाणाम्परस्परनैरपेक्षेण तत्क्रि
यान्वयिनां युगपत्तत्क्रियान्वयिनामिति फलितार्थः तेन
धवखदिरौ च्छिनत्तीत्यत्र एकस्यामपि द्विदा क्रियाव्यक्तौ
क्रमेणान्वितयोर्धवखदिरयोः साहित्यव्युदासः युगपदन्वित
योरेव साहित्यप्रतीतिरिति अत्र सम्वादन्दर्शयति ॥ ० ॥

तथाच शङ्खलिखितौ । रिक्थमूलं हि कुटुम्बमस्व
तन्त्राः पितृमन्तोमातुरप्येवमवस्थितायाः । मातुरपि
सकाशादस्वतन्त्राविभागानधिकारिण इत्याद्यतुः ।

सुव्यक्तमाह व्यासः । भ्रातॄणां जीवतोः पित्रोः
सहवासो विधीयते । तदभावे विभक्तानान्धर्म

स्तेषां विवर्द्धते । सहवासविधानमुखेन पृथग्भाव
निषेधात् । पितृमातृजीवनवतश्च विभागनिषेधात्
जीवतोरितिसाहित्यमविवक्षितम् । अत एकस्मिन्न
पि जीवति विभागो न धर्म्यः । किन्तु भूयोरभावे
यथाह । वृद्धस्यतिः । पित्रोरभावे पुत्राणां विभागः
सम्प्रदर्शितः । मातुर्निवृत्ते रजसि जीवतोरपि
शस्यते । निवृत्तरजस्कायां मातरि जीवन्त्यां विभा
गस्य मातृधनगोचरत्वानुपपत्तेः ॥ ० ॥

तथा चेति चक्येति । हि हेता यतश्चक्यमूलं गार्हस्थ्यं अतोऽस्त्र
तन्वाः व्ययानधिकारिणः इतरथा क्वैरेव स्नेह्यया धनव्यये
कृते धनविलयापत्त्या कुटुम्बरत्वा न स्यादिति भावः ।
अत्रैवं शब्देन मातुरवस्थाने अस्त्रातव्यस्य स्फुटमेवाभिधान
मिति भावः । न चास्य वचनस्य भार्यापुत्रश्वेत्यनेन एकमूल
त्वात् । स्वार्जितधने अस्त्रातव्यपरत्वमस्त्विति दायभागप्रकर
णान्नायात् । अतएव इदमस्यष्टमेव अतः स्पष्टमाह ।
व्यासइति । विधानमुखेन प्रतिपादनमुखेन । निषेधादिति ।
सहवासस्य जन्मप्रभृतिप्राप्ततया तद्विधानासम्भवात्पृथग्भा
वेति । पृथग्भावनिषेधस्यैव सहवासएवेतिनियमेन परमस्यया
वा वचनार्थत्वादितिभावः । अत्र जीवतोरिति दिवचनावगत

साहित्यस्य विवक्षितत्वे एकमात्रजीवनेन सहवासस्य प्राप्त्या
मातरि जीवन्त्यामपि विभागः स्यात् मातरि मृतायाम्भितरि
सत्वेऽपि विभागश्चापद्येत । अतस्तदविवक्षा माह । पित्रेत्यादिना ।
जीवनवतद्वयनेनाविवक्षितत्वे उद्देश्यविशेषणत्वमपिसाहित्यस्य
प्रतिपादितं जीवत्यि उमाह कमुद्दिश्य विभागाभावस्य विधेयत्वात् ।
यद्यपि पितृसत्वेऽस्त्वामित्वेनैव विभागाप्राप्तेः पित्रुपादानवैयर्थ्यं
तथापि दृष्टान्तार्थतदुपादानमतएव प्रागुक्तमातुरप्येव
भवस्थिताया इत्यत्र एवं शब्दः यथा पितरि जीवति विभागा
स्यात्तच्च तथा मातरि जीवन्त्यामपीति दृष्टान्तार्थकः प्रयुक्त
इति । उभयोरभावे अन्यतराभावे । एवञ्च जीवतोः साहित्या
विवक्षायामुपरमसाहित्यं स्फुटमुक्तमिति भावः । मातृधनगो
चरत्वानुपपत्तेरित्यस्य मातुर्निर्धनत्वापत्तेरिति शेषः ॥०॥

उभयाभावोक्तविभागस्यैव जीवतोऽपीत्यपि
कारेण निर्दिष्टस्य शस्त्वकीर्त्तनात् । उभयोरभावे
भ्रातृविभागः पितृधनगोचरएवावधार्यते । अत
एव जीवन्त्यामातरि मातृप्रधानकं विभागं निर्दि
शति व्यासः ॥ समानजातिसङ्ख्याये जातास्त्वेकेन
ह्रनवः । विभिन्नमातृकास्तेषां मातृभागः प्रशस्यते ।
तथा बृहस्पतिः ॥ यद्येकजातावहवः समानाजाति

सङ्ख्या । सापत्नास्तैर्विभक्तव्यं मातृभागेन धर्मतः
पुत्राणां जातिसङ्ख्यासाम्येन विभागे विशेषाभावात्मा
तुरेवायं विभागोन पुत्राणामित्युद्दिश्य विभागः
कर्त्तव्यः तेनेतरमातृघनइवात्रापि पुत्राणां मातरि
जीवन्त्यां न परस्परविभागे स्थातव्यम् । किन्तु
मातुरनुमत्यैव परं विभागो धर्मः । अतोयद्वौत
मादिभिरुक्तम् । विभागेतु धर्मवृद्धिरित्यादि तन्मा
तुरुपरमे वेदितव्यम् तत्र यद्यविभक्ताएव स्थातु
मिच्छन्ति तदा ज्येष्ठएव योगक्षेमशक्तः सर्वं
गृह्णीयात् । इतरे पितरामिव तमुपजीवेयुः ।

यथा मनुः । ज्येष्ठएव तु गृह्णीयात् पितृवन्धन
मशेषतः । श्रेष्ठास्तमुपजीवेयुर्यद्यैव पितरन्तथा ।

तथा गौतमः । सर्वं त्वं वापूर्वजस्य सेतरान् विभृ
यात् पितृवत् । वाशब्दात्पृथग्वा भवेयुः सद्य
वावसेयुः । सहवासश्च सर्वेषामिच्छातएव ।

यथा नारदः । विभृयादेच्छतः सर्वान् ज्येष्ठो
भ्राता यथा पिता । भ्राता शक्तः कनिष्ठोवा शक्त्य
पेक्षा कुले स्थितिः । शक्तः सन् कनिष्ठोपि सर्वान्

विभृयात् । मध्यमोत्र दण्डापूपन्यायास्त्रिद्वः ।
विभागस्येकस्यापोच्छया भवतीत्युक्तं प्राक् ॥ ० ॥

उभयाभावोक्तेति । उपस्थितविभागानुषङ्गेनैव शस्त्वान्वय
सम्भवे विभागान्तराधाहारकल्पनायां गौरवादिति भावः ।
पितृधनगोचरएवेति पितामहधनस्यापि पितुः स्वत्वत्वात्पितृ
धनत्वेन तस्यापि संयहः । पितृधनविभागप्रकरणे एवकारेण
मातृधनमात्रव्यवच्छेदः तेनास्य वचनस्य न प्रागुक्तपिता
महधनेगोचरत्वविरोधः । मातृप्रधानकं मातृमस्यन्धत्वेन
निर्देशपूर्वकं तत्रापि पितृधने स्वत्वत्वात्पितृभूतेऽप्यर्थः ।
उक्तं प्रागिति । पितृधनविभागप्रकरणे एकस्यापि स्वधने
स्वान्यादित्यादिनेत्यर्थः ॥ ० ॥

अतएव विभागं प्रक्रम्याह कात्यायनः । अप्राप्त
व्यवहाराणां धनं व्ययविवर्जितम् । न्यसेयुर्वन्धुमि
त्रेषु प्रापितानान्तयैव च ।

तथा रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्राप्तेरिति
वचनम् । अयञ्च पुत्राणां विभागः पुत्रपौत्रप्रपौत्र
पर्यन्तः समानोनात्रोत्पत्तितः प्रत्यासत्तिक्रमे
णाधिकारक्रमः । पुत्रादीनान्तराणामेव पार्ष्वणे

तत्पिण्डतद्गोम्यपिण्डद्वयविधानात् । अतएव
देवलः । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
उपासते सुतं जातं शकुन्तादिव पिप्लवम् । मधु
मांसैश्च शाकैश्च पयसा पायसेन च । एष नो दास्यति
आहुं वर्षासु च मघासु च ।

तथा शङ्खलिखितयमाः ॥ पिता पितामहश्चैव
तथैव प्रपितामहः जातं पुत्रं प्रशंसन्ति पिप्लवं
शकुन्तादिव । मधुमांसेन खड्गेन पयसा पायसेन वा ।
एष दास्यति नस्तृप्तिं वर्षासु च मघासु च ॥ प्रपिता
महग्रहणात् पुत्रपदम्प्रपौत्रपर्यन्तपरम् । तदनेन
प्रपौत्रपर्यन्तस्य आहुदानेन प्रपितामहपर्यन्तोपका
रत्वात् प्रपौत्रपर्यन्तस्य तुल्योदायाधिकारः ।
अतएव जीवत्पितृकयोः पौत्रप्रपौत्रयोरनधिकारः ।
पार्वणानधिकारितया पिण्डाप्रदातृत्वात् । पित्रो
रूपरमे च भ्रातृणाम्पितृकृतोविशेषः परं निवर्त्तते ।
अन्यत्सर्वमेव प्रत्येतव्यम् ॥ ० ॥

अप्राप्तव्यवहारावालकाः पञ्चदशवर्षादनधिकवयस्काः ।
शेषितानामिति । अत्र तदनुमतिं विना विभागः स्फुट एवेति
भावः । अतएव प्रपौत्रपर्यन्तानामनुलोपकारकता अत

एव प्रपितामहपर्यन्तानान्तुस्योपासनेत्याह । अतएवेति । तृप्तिं दास्यति जनयिष्यति । प्रपौत्रपर्यन्तपरमिति । पार्ष्वणकर्तुं सपिण्डत्वेन लक्षणयेत्यर्थः । अतएव धनाधिकारस्योपकारि निबन्धनत्वादेव । पितृभागस्यैवात्तरकालान्तङ्गामित्वाच्च निरंशतेति बोध्यम् । पिण्डाप्रदातृत्वादिति । अत्र पिण्डदानयोग्यतैव विवक्षिता नतु तदुपधानम् । तथात्वे दैवादकृतपार्ष्वणस्य पुत्रादेरधिकारापत्तेः । स्वरूपयोग्यतातु पौत्रादेर्मृतपितृकपौत्रत्वादिनैवेति । तथैवाविभक्ते मृते पुत्रे तत्सुतं रिक्स्थभागिनमित्यादि शास्त्रेणावगमात् । तेन जीवत्पितृकपौत्रादेर्न स्वरूपयोग्यतेति बोध्यम् ॥ ० ॥

यदाचैकः पुत्रोस्ति अपरस्य पुत्रस्य पुत्राः सन्ति तदा तस्यैकोभागोअपरस्य वङ्गनां नष्टृणां स्वपित्रधोनजन्ममूलत्वाद्द्वनसम्बन्धस्य यावत्येव धने तस्य स्वामित्वार्हत्वन्तावत्येव तेषामपि यच्चानेकपितृकाणां तु पितृतोभागकल्पनेति वचनन्तस्य नायं विषयः । पितृव्यवितुरेव तत्सर्व्वन्धनमिति धितृव्यस्यैव सर्व्वं स्यात् । नतु तद्भातुः पुत्राणाम् । पितृतोभागकल्पनात् पितापुत्रविभागवद्भागकल्पने पितृभागद्वयसम्बन्धात्पितृव्यस्य भागद्वयमेवेति

तद्भातुः पुत्राणां त्वेकैकोभागः स्यात्तदा च श्रिष्टा
चारविरोधः स्यात् । अस्य पुनरेष विषयो यत्रैकस्य
भ्रातुरल्पसङ्ख्याकाः पुत्राः सन्ति अपरस्य वज्रसङ्ख्याका
स्तत्र पितृतोभागकल्पनेति ॥ ० ॥

उपकारविशेषादहनां मृतपितृकपौत्राणां प्रत्येकमिदं
तुल्यभागमाशङ्क्याह । यदेति । तावत्येवेति । तथा च रत्नाकरे
कात्यायनः । अविभक्ते मृते पुत्रे तत्सुतं रिक्तभागिनम् ।
कुर्वीत जीवनं येन लभ्यं नैव पितामहात् । लभेतांशं स पितृव्यन्तु
पितृव्यान्तस्य वा सुतात् । स एवांशस्तु सर्वेषां भ्रातृणां न्याय
तो भवेत् । लभत तत्सुतो वापि निवृत्तिः परतो भवेदिति ।
अत्र न्यायतइत्यस्य स्वपित्रधीनजन्ममूलत्वादित्यर्थः । अत
एव पार्ष्वणपिण्डदातृत्वेऽपि दौहित्रस्य नाधिकारः मातुला
दिसत्त्वे तन्मातुरेवानधिकारात् । प्रपौत्रपुत्रस्य तु पार्ष्वण
पिण्डदातृत्वाभावान्नाधिकारः । अत्रैव विषये यत्केन चिदिदं
वचनं साधकतया उपन्यस्तं तद्दूषयितुमेतद्वचनमाह । यच्चेति ।
अनेकपितृकाणामिति । अनेके पितरो येषामिति व्युत्पत्तेरने
कभ्रातृणामनेके पुत्राः सूचिताः । अयमपितृव्यभ्रातुः पुत्रविभागे
पितृतोभागकल्पनेत्यस्य किम्विचित्रं एव पुत्रस्य भागइत्यर्थः
पितापुत्रवद्भागोऽत्रार्थः । तत्र नाद्यइत्याह । पितृव्यपितुरेवेति ।

द्वितीयमाशङ्क्य निषेधयति । पितृतदति । समतमाह ।
 चक्ष पुनरिति । यचेति । तथाच विभिन्नपितृकाणामौचाद्या
 पितामहधनविभागे स्त्रियचनुसारेण भागकल्पनेति वचनार्थ
 इतिभावः । पुत्रादत्युपलक्षणम् । पौत्रा अपि बोध्याः ॥०॥

इदानीं सवर्णभ्रातृणां विभागोविंशोद्वारादि
 पूर्वकोवा समएव वेति विकल्पः । उद्धारमन्तरे
 णापि समविभागमाह पितृगीत्यनुवृत्तौ ।

हारीतः समानतोमृते रिक्थविभागः ।

तथोशना । वर्णानामानुलोम्यानां विभागो
 यस्मदर्थितः । समत्वेनैकजातानां विभागस्तु
 विधीयते ।

तथाच पैठीनसिः पैतृके विभज्यमाने दायाद्ये
 समोविभागः ।

तथा याज्ञवल्क्यः । विभजेरनुताः पित्रोरुर्द्ध
 मृक्थमृणं समम् । अतः सोद्धारानुद्धारयोर्विकल्पः ।
 नच केवलसमप्रविभागस्यापि शास्त्रीयत्वान्नित्य
 वत्तस्यैवानुष्ठानं स्यादिति वाच्यम् । भक्त्यतिशयेन
 भ्रातृणामुद्धारानुमतेरपि सम्भवादिभागाविभाग
 वदिकल्पः अतएवाद्यतनानां भक्त्यतिशयाभावात्सम
 भागएव लोके दृश्यते । उद्धारार्हज्येष्ठाभावाच्च ॥०॥

इदानीं काष्ठविशेषतोभ्रातृविभागनिरूपणानन्तरं ।
विकल्पोदिप्रकारो निरूप्यत इति शेषः । तत्र सोद्धारः ज्येष्ठस्य
विभोद्धारेत्यादिना प्रागेवोक्तः । सम्प्रति समं साधयति ।
उद्धारमन्तरेणापीति । समानतः समत्वेन तृतीया विशेषणे ।
अनुलोम्यानां अनुलोमजातानां ब्राह्मणादेः क्षत्रियादि
पुत्राणामित्यर्थः । एकजातानामेकजातीयमाहजातानामि
त्यर्थः । दायदत्तदेव दन्दायाद्यन्तस्मिन् दायद्ये विभागोऽत्रः
सम इत्यर्थः । विभागो विभाज्यमानदायः समान इति वार्थः ।
अतः विभागद्वैविध्यतः । विकल्पो व्यवस्थितः न त्वैच्छिकः विषम
शिष्टत्वात् । व्यवस्थितत्वं व्यवस्थापयितुमाशङ्कते । न चेति ।
नित्यवदिति नियतमित्यर्थः । समभागस्याऽपि ग्राह्यीयत्वे
सोद्धारो बलवद्देषादिति भावः । अद्यतनानामिति । कनिष्ठा
नामिति शेषः यत्र चाद्यगर्भसम्भवरूपज्येष्ठाभावस्तत्रापि समो
विभाग इत्यवधेयं । ननु जन्मविद्यागुणज्येष्ठ इत्यनेन गुणस्यैवाधि
क्यांश्च प्रयोजकत्वमुक्तञ्च न भवति त्रयस्यापि प्रमाणाभावादत
आह । उद्धारार्ह इति । वेदविद्यावैदिककर्मानुष्ठानकनिष्ठा
वृद्धनादिगुणवत एव उद्धारार्हतया कलौ तादृशज्येष्ठस्य
प्रायेणासत्त्वादिति भावः । तेन विकल्पोऽपि गुणतदभावाभ्यां
व्यवस्थित एवेति द्रष्टव्यं ॥ ० ॥

यस्तु स्वयोग्यतामात्रपरामर्शात् पितृपितामहा
दिधनविभागे निस्सहः स किञ्चिदेव तण्डुलप्रस्थ
मपि दत्त्वा तत्पुत्रादेः कालान्तरीयदुरन्ततानिरा
शार्थं विभजनीयः ।

यदाह मनुः ॥ भ्रातृणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः
स्वकर्माणा । स निर्भाज्यः स्वकादंशात् किञ्चिद्दत्त्वा
पजीवनम् ।

तथा याज्ञवल्क्यः । शक्तस्यानीहमानस्य
किञ्चिद्दत्त्वा पृथक्क्रिया । पितरि चोपरते सोदर
भ्रातृभिर्विभागे क्रियमाणे मात्रे पुत्रसमांशोदा
तव्यः । समांशहारिणी मार्ततिवचनान्मातृपदस्य जन
नीपरत्वान्न सपत्नीमातृपरत्वमपि । सकृच्छ्रुतस्य
मुख्यगौणत्वानुपपत्तेः । समांशताच मातुर्भ्रातृ
दिभिः स्त्रीधनादाने दत्ते पुनरर्द्धं पित्रा च पुत्रेभ्यः
समविभागदाने सर्वपत्नीनामेव पुत्रसमांशता
कर्त्तव्या ॥ ० ॥

स्वयोग्यतामात्रपरामर्शात् । स्वयोग्यताबलात् । किञ्चि
दिति । किञ्चिद्दृष्ट्वा निवृत्तिस्तस्यान्यत्रापेक्षायञ्जिका इत्य
तस्तदुपादानम् । भ्रातृणामिति । भ्रातृणां विभागे क्रियमाणे

वस्तु अनः स्वकर्मणा शक्तस्येति तृधनं नेहेत न चेष्टत इत्यर्थः ।
 एवमेव मिताचराकृच्छूलपाणिहलायुधप्रभृतयः । प्रका
 शकारादयस्तु भागिषु व्याप्रियमाणेषु आलस्यादिना योनव्या
 प्रियते सनिर्भाज्यः मूलधनादंशमात्रन्दत्वा अर्जितधनभाग
 शून्यः कार्य्यइति वचनं व्याचक्रुः । तदसत् एतस्योपघाता
 र्जितविषयत्वसाधनोपघातेनार्जिते निर्व्यापारस्यापि साधारणं
 समाश्रित्येत्यादिना भागावगतेर्विरोधात् । अनुपघातार्जितविष
 यत्वे तु अनुपपन्नं पितृद्रव्यमिति तदीयपरवचनवैयर्थ्यापाता
 दिति । सोदरभ्रातृभिरिति । सोदरासोदरविभागे तु नैवन्तत्रै
 कस्याः सर्व्वपुत्रमातृत्वाभावात् । मातुरेवांशितायावचनेन
 बोधितत्वात् न सपत्नीमातुरिति । सक्लच्छ्रुतस्येति । युगपद्वृत्ति
 द्वयविरोधादिति भावः । इदं प्राचीननयमाश्रित्याहितञ्च
 तु नयानाम् । किन्तु । नयैरपि तात्पर्यान्यथानुपपत्तैव
 गङ्गायां घोषमत्स्यैस्तद्व्यादौ वृत्तिद्वयाङ्गीकारात् । प्रकृते
 तथाविधोभयतात्पर्य्यग्राहकप्रमाणाभावेन मुख्यपरतन्ति ।
 तन्मताश्रयेणपि न वृत्तिद्वयसम्भवइति भावः । अतएव पितृ
 पत्नीत्वेनोभयसाधारणरूपेण लक्षणैवोभयबोधसम्भवइत्यपि
 परास्तम् । लक्षणाहेतुत्वाभावात्सर्व्वपत्नीनामिति । पुत्रहीना
 नामिति वक्ष्यते ॥ ० ॥

तदाह याज्ञवल्क्यः । यदि कुर्यात्समानांशान्
पत्न्यः कार्य्याः समांशिकाः । न दत्तं स्त्रीधनं यासां
भर्ता वा अशुरेण वा । अधिविन्नस्त्रियै देयमाधिवे
दनिकं समं । न दत्तं स्त्रीधनं यासान्दत्ते त्वर्द्धं प्रकल्प
येत् । पुत्रहीनाश्च पितुः पत्न्यः समानांशान् पुत्रवत्यः ।

तथा व्यासः । असुतास्तु पितुः पत्न्यः समानांशाः
प्रकीर्त्तिताः । पितामहश्च सर्वास्तामादृतुल्याः
प्रकीर्त्तिताः ।

तथा विष्णुः । मातरः पुत्रभागानुसारभाग
हारिण्यः अनूढादुदितरश्च । पुत्रभागानुसारेण
यथा वर्णक्रमेण पुत्राणाञ्च चतुस्त्रिंशैकभागिता
तथा पत्नीनामपीति ॥०॥

पुत्रेभ्य इत्यत्र दत्ते पुनरर्द्धमित्यत्र च प्रमाणं क्रमेण
वचनद्वयमाह । तदाहेति । समानांशान् पुत्रानिति शेषः ।
अधिविन्नेति । अधिउदाह्यमानस्त्रियमपेक्ष्याधिकाद्वत्तापूर्वो
दाहिता या तस्यै स्त्रियै इत्यर्थः । आधिवेदनिके अधिवेदना
निमित्तं समुदाह्यमानस्त्रियै देयमित्यर्थः । यस्योदमधिविन्न
स्त्रीसम्पदानकदानविषयस्य दत्तं स्त्रीधनं यासामिति तु पित्र
कृतविभागविषयम् । तथाप्येकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थो नाप्यर्थः

विना अन्यत्रापि तथेतिन्यायात् । अत्रापि तथाकल्प्यतइति ।
तथोक्तं । पुत्रहीनाश्चेति । अत्र कश्चिदिदमितुः पत्न्यइति
स्वरसात् । पुनरुक्तविभागविषयमितृकृतविभागे तु । सपुत्रापुत्र
पत्नीनामंशश्चित्त्वमित्याह । तदसत् । मातृपदस्य न सपत्नीमा
तृपरत्वमितिव्याख्यानविरोधात् । गर्भकृतविभागे पुत्रवती
पत्नीनामंशश्चित्त्वे । समांशहारिणी माता पुत्राणां स्थान्मृते
पतावित्यत्र माता तु पितरि प्रेते पुत्रतुल्यांशहारिण्येत्यत्र च
मृते पताविति । पितरि प्रेते इतिविशेषणवैयर्थ्याच्च । नच
पतिसत्त्वे तत्समांशहारिणी तदभावे पुत्रसमांशित्वेत्या
वाच्यइति वाच्यम् । यदि कुर्व्यात्त्वमानांशानित्यत्र उपस्थित
पुत्रसमांशतायाएव पत्नीनांशः । नतनुपस्थितपतिसमांश
तायाइति । तस्मात्पुनरुक्तविभागे पुत्रहीनपत्नीनामंशश्चित्त्वं
नपुत्रवतीनां पुनरुक्तविभागे तु मातृणांमितिस्थितिः । पितु
रितिकर्त्तरि पठ्यते । पितामहइति पितामहधनविषयं अत्र
पितामहोपदमित्यजननीमात्रपरस्यगुक्तयुक्तेरिति केचित्
अपरेतु बहुवचनात्सर्वदत्तुपादानात् । सर्व्वाणामेव पिता
महपत्नीनामंशित्वमिति प्राहुः ॥ ० ॥

अनूढानां दुहितृणां पुत्रभागमनुद्धृत्य तच्च
तुर्थांशस्तदाह ।

बृहस्पतिः । समांशमातरस्त्वेष्टान्तुरीयांशश्च
कन्यकाः । पुत्रस्य भागत्रयम् । कन्यकाया एको
भागः यदाह ।

कात्यायनः । कन्यकानां न्वदत्तानाञ्चतुर्थीभाग
इष्यते । पुत्राणाञ्च त्रयोभागाः स्वाभ्यं स्वल्पधने
स्मृतम् । अन्यधने पुत्रैः स्वात्त्वादंशादाकृष्य कन्या
भ्यश्चतुर्थीऽप्रीदातव्यः ।

यथा मनुः । स्त्रीभ्योऽप्येभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भातरः
पृथक् । स्वात्त्वादंशाच्चतुर्भागपतिताः स्युर
दित्सवः । प्रदद्युरिति प्रदानश्रुतप्रदाने च पतितत्वं
श्रुतेर्न कन्याभिरधिकारिवुद्ध्या ग्रहीतव्यम् न ह्यधि
कारिणे भ्रात्रेऽपरो भ्राता स्वादंशाहदाति ।

यथा याज्ञवल्क्यः । असंस्क्रतास्तु संस्कार्या
भ्रातृभिः पूर्वसंस्क्रतेः । भगिन्यश्च निजादंशाहत्वां
शन्तु तुरीयकम् । भगिनीनां संस्कार्यतामाह
नाधिकारितां एवञ्च वज्रतरधने विवाहेचित
धनं दातव्यम् न चतुर्थीशनियमइति सिद्ध्यति ।
एतच्च कन्यापुत्रयोः समसङ्ख्यत्वे ज्ञातव्यम् । विषम
सङ्ख्यत्वे च कन्याया एव वज्रतरधनं वास्यात् ।
पुत्रस्य वा निर्धनता स्यात् । न चैतदुचितम् । पुत्रस्य

ग्राधान्यात् । यच्चेदमत्र बाधकमुक्तम् । अविद्यमाने
पित्रर्थे स्वांशादुद्भूत्य वा पुनः । अवश्यकार्याः संस्का-
राभ्रातृभिः पूर्वसंस्त्रतैः ॥ ० ॥

स्वल्पधने इति । यद्धनस्य एकपुत्रलभ्यतुरीयांशेन कन्यासं-
स्कारेण सम्भवति तदेव स्वल्पधनं तद्भ्रातृभिरेव विभजनी-
यम् । पञ्चाक्षरेव स्वस्वद्रदादाकृत्य भगिनीसंस्कारः कार्य-
इति भावः । न चतुर्धाशनियमइति । अतएव रत्नाकरे विष्णुः
अनूढानां कन्याणां वित्तानुमारेण संस्कारं कुर्यादिति । विष-
मेति । पुत्राणां चतुरादिमह्यत्वे कन्यायाश्चैकत्वे कन्याया
बहुतरधनं चतसृषु कन्यासु सतीषु पुत्रस्यैकस्य निर्द्धनते
त्यर्थः ॥ ० ॥

अस्मान्नारदवचनादवश्यकर्त्तव्यत्वाद्भगिनीनां
संस्कारस्य निरंगताऽपि न दोषायेति । तदयुक्तम् ।
भ्रातृसंस्कारार्थत्वादस्य वचनस्य । भ्रातृणां पूर्व-
संस्त्रतैरिति पाठस्य नाकारत्वाद्भ्रातृसंस्कारस्य प्रकृ-
तत्वादिदं हि पूर्वमुक्तम् । येषान् न कृताः पित्रा
संस्कारविधयः क्रमात् । कर्त्तव्याभ्रातृभिस्तेषामपै-
तृकादेव तद्वनात् । येषान्तेषामिति पुंलिङ्गनिर्देशा

देतदनन्तरमेवाविद्यमानइति वचनारम्भात्भ्रातृ
संस्कारार्थमेवेदं वचनमिति पितृपितामहादिधन
विभागः ।

अथ स्त्रीधनविभागार्थं प्रथमं स्त्रीधनं निरूप्यते ।
तत्र विष्णुः । पितृमातृसुतभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपाग
तम् । आधिपदेनिकम्बन्धुदत्तं शुल्कान्वाधेयक
मितिस्त्रीधनम् । अन्वाधेयमाह ।

कात्यायनः । विवाहात्परतोयत्तु लब्धभर्तृकु
लात् स्त्रिया । अन्वाधेयन्तदुक्तान्तु लब्धम्बन्धुकुला
त्तया । ऊर्द्धं लब्धन्तु यत्किञ्चित्संस्कारात्प्रीतितः
स्त्रिया । भर्तुः पित्रोः सकाशाद्वा अन्वाधेयन्तु तद्गुणः
बन्धुपदेन मातापित्रोरुपादानं । तेनायमर्थः ॥०॥

भ्रातृणामिति पाठे एकशेषाद्भगिनीसंस्कारस्याप्यावश्य
कता स्यात् । अतस्तन्निरस्यति । भ्रातृणामिति । ननु भ्रातृसं
स्कारार्थलवद्भगिनीसंस्कारार्थलमपि वचनस्य कुतो न स्यादि
शेषाश्रवणादत आह । भ्रातृसंस्कारस्येति । पुंलिङ्गनिर्देशा
दिति । न च शेषाश्रयत्वात्तानामिति न पुंसकनिर्देश एव कुतो न स्या
दिति वाच्यम् । अर्थसाधुत्वे सम्भवति शब्दसाधुत्वमात्रस्या
न्यायत्वादित्यभिप्रायादिति । वस्तु तस्तु । पितृपितामहा

भावे भगिनीदानाधिकारितया भ्रातुरप्यावश्यक एव भगनी
संस्कारः । अथ चतुमती भवति दाता प्रतिग्रहीता च नर
कमाप्नोतीति श्रुतेः । अत एव याज्ञवल्क्येनापि । भगिन्यश्च
निजादंशदित्यनेन भगिनीनामपि भ्रातृवत्संस्कार्यत्वमुक्तमि
त्यतोवद्वतरभ्रातृसंस्कारात् भ्रातुर्निर्द्धनतावत् । भगिनी
संस्कारादपि निर्द्धनता नदोषायेति सुधीर्भिर्भाव्यम् । प्रकर
णान्तरमाह ॥ अथेति ॥ अध्यग्न्यादिकमये वक्ष्यते । विवा
हात्परतइति । एतेन पितृमातृभ्रातृबन्धुदत्तमितिकाला
न्तरदत्तमात्रपरिग्रहार्थमिति सुव्यक्तम् । बन्धुपदेनेति ।
लब्धबन्धुकुलात्तथेत्यत्रेति शेषः ॥ ० ॥

मातापितृद्वारेण सम्बन्धिनापित्रोश्च सकाशाद्य
क्तुविवाहात्परतोलब्धम् । तथा भर्तुः सकाशाद्गर्त
कुलाच्च श्वशुरादितोयल्लब्धं धनं तदन्वाधेयम् ।
विष्णुवचने च बन्धुपदं मातुलाद्यभिप्रायम् । पित्रा
दीनां स्वपदेनैव निर्दिष्टत्वात् । परिणयनसमय
लब्धस्य च ब्राह्म्याद्यासुरादिविशेषेण भर्तुः पितृर्वा
धिकारात् ।

स्त्रीधनमाह तुर्मनुकात्यायनौ । अध्यग्न्यध्या
वाहनिकन्दत्तञ्च प्रीतितः स्त्रियै । भ्रातृमातृपितृ
प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ।

तथा नारदः । अध्वन्यध्यावाह्निकम्भर्तृदाय
स्तथैव च । भ्रातृदत्तमितृभ्याञ्च षड्विधं स्त्रीधनं
स्मृतम् ॥०॥

मातापितृद्वारेणेति । मातुः पितृभ्यां यस्य सम्बन्धस्य घट
कलन्तसम्बन्धवतां मातुलपितृव्यादीनामित्यर्थः । एवञ्च सति
मातृपितृभर्तृदत्तस्य अन्वाधेयकसंज्ञा न स्यादत ऊर्द्धं लब्ध
मित्यभिहितम् । तन्न आर्थमाह । पित्रोः सकाशादिति ।
तथा भर्तुः सकाशादिति च । लब्धम्भर्तृकुलादित्युक्तस्यार्थ
माह । भर्तृकुलाच्चेति । इत्थं च विष्णुवचनोपात्तस्य सुत
दत्तस्य नान्वाधेयत्वं सुतस्य साक्षादेव सम्बन्धत्वेन निरुक्तबन्धु
मर्तृकुलत्वासम्भवादिति सुधीभिर्भाव्यम् । स्वपदेनेति । पितृ
मातृसुतभ्रातृदत्तमित्यत्र पित्रादिपदेनेत्यर्थः । ननु विवाहा
त्परतदिति ऊर्द्धं संस्कारादिति च विहाय । विवाहसामान्ये
नैव भर्तृतत्कुलात्पितृमातृतत्कुलाच्च लब्धस्यान्वाधेयसंज्ञाकि
मिति न कृतेत्याशङ्क्यामाह । परिणयनसमयलब्धेति ।
अयम्भावः अन्वाधेयसंज्ञायास्त्वावत्तद्रूपेऽप्रजास्त्रीधने वक्ष्य
माणोभाचधिकारएव फलं परिणयनसमयलब्धे च न
भाचधिकारः ब्राह्म्यादिपञ्चसु भर्तुः आसुरादित्रिषु पित्रोरे
व तेषामभावे देवरादेरेवाधिकारात् अतः संज्ञाया स्तस्या

धारण्ये प्रयोजनाभावः प्रत्युत तत्साधारण्ये तत्र भर्त्रधिकार
लोपकविशेषवचनेन भ्रात्रधिकारवचनस्य विरोधप्रसङ्गा
तस्य सङ्कोचोवाच्यः । तथाच । प्रक्षालनाद्विपक्षस्य दूर
दृश्येनम्बरं इतिन्यायेन तद्भावावर्तनमेव संज्ञायाः समुचित
मिति । नच तथापि विवाहसमयादन्यत्रेत्येवाच्यतां किंपर
तद्व्यादिपर्यन्तेनेति वाच्यम् । तथा सति विवाहात्पूर्वं
वाग्दानोत्तरं पतिदत्ते भ्रात्रधिकारापत्तेरिति ॥ ० ॥

एतद्भाकुरुते कात्यायनः । विवाहकाले यत्स्त्री
भ्योदीयते ह्यग्निसन्निधौ । तदध्यग्निकृतं सङ्निः
स्त्रीधनं परिकीर्तितम् । यत्पुनर्लभते नारी नीय
माना हि पैतृकात् । अध्यावाहनिकं नाम तत्स्त्री
धनमुदाहृतम् । पैतृकादित्येकशेषात् पितृमातृ
कुलात् यत्लभते धनम् । भर्तृगृहं नीयमाना तद
ध्यावाहनिकम्भर्तृदायोभर्तृदत्तन्धनं भर्तृदाय
मनविधाय मन्वादिभिर्भर्तृदत्तस्याभिधानात् ।
नारदेनापि भर्तृदत्तमनविधाय भर्तृदायस्या
भिधानात् तथा अन्यत्रापि भर्तृदत्ते भर्तृदाय
प्रयोगोदृष्टः ।

यथा कात्यायनः, भर्तृदायं मृते पत्न्यै
विन्यसेत्स्त्री यथेष्टतः । विद्यमाने तु संरक्षेत्पय

तत्कुलेऽन्याथा । अस्यार्योभर्तृदत्तन्धनमभर्तृरि
 मृते यथेष्टं विनियुञ्जीत जीवति तु तद्रक्षेदिदमुक्त
 हस्तताज्ञापनार्थम् । तथा व्यासवचनमपि भर्तृ
 देयपर्यन्तताज्ञापनार्थम् । यथा द्विसहस्रः परा
 दायः स्त्रियै देयो धनस्य तु । यच्च भर्ता धनन्दत्तं
 सायथा काममश्रुयात् । द्विसहस्रपर्यन्तं स्त्रियै देयो
 नाधिकः । केनेत्याकांक्षायाभर्त्रेति श्रुतमन्वेति ॥ ० ॥

एतदध्यग्न्यादिकन्दायपदस्य संक्रान्तसम्बन्धिधनपरत्व
 ब्रह्ममपनयति । भर्तृदायइति । मन्वादिभिरिति । अदिना
 कात्यायनविष्णुपरिग्रहः । अत्र मनुकात्यायनाभ्यां दत्तञ्च
 प्रीतितः स्त्रियै इत्यनेन विष्णुना चान्वाधेयमित्यनेनेति
 भावः । तथाच तेः सहैकश्रुतिमूलत्वानुरोधादायपदं दत्तपर
 मिति भावः । नच वैपरीत्यं वज्रपुल्लक्षणाप्रसङ्गात् मनुस्मृतेर्बल
 वत्ताच्च । भर्तृदायं मृते इति । अत्र मृते विद्यमाने इत्य
 भिधानात् । न संक्रान्तसम्बन्धिधनपरता । विन्यसेत् विनियुञ्जीत
 उपयेत् स्थापयेत् । अन्यथा स्वयं रक्षणासामर्थ्यं अन्यथा तद्व
 नेन वर्तनासम्भवे तत्कुले उपयेत्तत्कुलमाश्रित्य कालङ्कमये
 दित्यर्थ इति केचित् । केनेत्याकांक्षायां केन देयइत्याकां
 क्षायां ॥ ० ॥

न पुनरश्रुतकल्पना । तथाच । देयइति ददा
तिर्मुख्यः स्यात् मृतपतिधने तु तावति पत्न्याएव
स्वामित्वाद्गौणः स चान्याय्यः । यच्च भर्तृदत्तन्धन
न्तद्यथाकाममश्रीयादतोऽपुत्रस्य मृतस्य पत्युर्धनं
द्विसहस्रपर्यन्तएव पत्न्या अधिकारो न सर्व्वेति
यदुक्तं तद्विद्वद्भिरनादेयम् । एतच्च विस्तरेण
वक्ष्यते ।

आह याज्ञवल्क्यः । पितृमातृपतिधातृ
दत्तमध्यग्न्युपागतम् । आधिवेदनिकञ्चैव स्त्रीधन
म्यरिकीर्त्तितम् । यच्च द्वितीयस्त्रीविवाहार्थिना
पूर्व्वस्त्रियै पारितोषिकन्धनन्दत्तन्तदाधिवेदनि
कम् । अधिकस्त्रीलाभार्थत्वात्तस्य ।

यथा देवलः वृत्तिराभरणं शुक्लं लाभश्च स्त्री
धनम्वेत् । भोक्त्री तत्स्वयमेवेदम्यति नार्हत्यनापदि ।

तथा व्यासः विवाहकाले यत्किञ्चिदरायोद्दिश्य
दीयते । कन्यायास्तद्वनं सर्व्वमविभाज्यञ्च बन्धुभिः ।
उद्दिश्येति कन्याया इदमवत्वित्युद्दिश्य वराय ग्रहणं
न पुनरेतदभिसन्धिं विनापीत्यर्थः अतएव विवाह
काल इति प्रदर्शनार्थञ्च पुनरेतदेव प्रयोजकं । दाच

भिसन्धिनिमित्तत्वात् स्वत्वस्य । तथाच प्रामाणिकं
वचनं यद्वत्तं दुहितुः पत्ये स्त्रियमेव तदग्नियात् ।
मृते जीवति वा पत्यौ तदपत्यमृते स्त्रियाः । विवा
हकाल इति न विप्रिनष्टि ॥ ० ॥

अश्रुतकल्पनेति । अश्रुतराधिकारिणा भ्रात्रादिना स्वयं
सर्वं गृहीत्वा द्विसहस्रपणपर्यन्तं स्त्रियै दायोदेय इत्यश्रुत
भ्रात्रादीनां कर्तव्यकल्पनेत्यर्थः । एतच्चेति । मृतस्यापुत्रस्य
पत्याः सर्वधनाधिकारित्वेत्यर्थः । वक्ष्यत इति । अपुत्रधना
धिकारिनिर्गुणे इति शेषः । अहिति । स्त्रीधनमिति प्रागुक्ते
नान्वयः पित्रादिदत्तं विवाहात्पूर्वं परतो वा विवाहकाले
इत्तस्य अश्रुतिपदेनैव प्राप्तेः । वृत्तिर्यासाच्छादनविप्रिष्टं
शुल्कं वक्ष्यमाणं लाभमृणादिदृष्टिः वराय दानं वरहस्ये
समर्पणमदभनार्थमुपलक्षणमित्यर्थः । उपलक्षणत्वे हेतु
माह । दावभीति । तथाचाभिसन्धेः स्वजनकत्वस्यान्यत्र
कृततथोक्तिष्वे विवाहकालस्य सहकारित्वकल्पने प्रमाणा
भावोऽदृष्टकल्पनागौरवस्य स्यादिति भावः । तदुपलक्षणत्वे
वचनमपि प्रमाणयति । तथाचेति । न विप्रिनष्टि न विप्रैर्वत्तं
दत्तवान् स्यादिति भावः ॥ ० ॥

अभिसन्धितु दुष्टिचन्वयाभिधानादेव लब्धत्वा
 श्रोतः तदेवमव्यवस्थितसङ्ख्यास्त्रीधनकीर्त्तनाच्च पद
 सङ्ख्याविवक्षिता किन्तु स्त्रीधनकीर्त्तनमात्रपराणि
 मुनिवचनानि ॥ तदेव च स्त्रीधनं यद्भर्तृतः स्वात
 न्येण दानविक्रयभोगान् कर्त्तुमधिकरोति तदिदं
 किञ्चित्सङ्क्षिप्याच्च कात्यायनः ॥ प्राप्तं शिल्पैस्तु यदि
 तन्म्रीत्या चैव यदन्यतः । भर्तुः स्वाम्यन्तदा तत्र
 शेषन्तु स्त्रीधनं स्मृतम् । अन्यतइति पितृमातृभर्तृ
 कुलव्यतिरिक्ताद्यस्तब्धं शिल्पेन वा यदर्जितमत्र
 भर्तुः स्वाम्यं स्वातन्त्र्यं अनापद्यपि भर्ता ग्रहीतु
 मर्हति । तेन स्त्रियाश्चपि धनञ्च स्त्रीधनम
 स्वातन्त्र्यात् । एतद्व्यतिरिक्तधनन्तु स्त्रियाएव ।
 यत्र दानविक्रयाद्यधिकारस्तदाच्च ।

कात्यायनः ॥ ऊढया कन्यया वापि पत्युः पितृगृहे
 ऽथवा । भर्तुः सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं
 स्मृतं । सौदायिकम्वनम्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते ।
 यस्मात्तदानृशंस्यार्थनैर्दत्तं तत्प्रजीवनम् । सौदा
 यिके सदा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं परिकीर्त्तितम् । विक्रये
 चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि ॥ ० ॥

अथयच्छित्तमश्नोति । अनिश्चितमश्नोत्यर्थः । मन्त्रपुत्रपदि
 आदधिकस्यापि शुल्कलाभादेर्देवसादिभिरभिहितमादिति
 भावः । पितृमातृमत्तकुलेति । पित्रमातृभर्तारोपक्षिन्
 कुले इति वज्रगीहिः अन्यथा लभ्यभर्तृकुलात्तयेत्यत्र भर्तृ
 कुलादिपदाङ्गर्जादिपरिग्रहेण स्यात् । अनापद्यतीति ।
 तथाचोक्तद्विविधस्त्रीधने भर्तुरिच्छैव स्त्रत्वजनिका पत्नीस्त्रत्व
 नात्रिका च तदन्यस्त्रीधने तु भर्ता आपत्कालोऽपेक्ष्यतइति
 भावः । स्त्रिया अपि धनं स्त्रीस्त्रत्वात्पदोभूतमपि धनम् । न
 स्त्रीधनम् । नेतरनैरपेक्ष्येण स्त्रिया यथेष्टविनियोज्यम् । अस्मा
 तस्यादिति एतच्च भार्यापुत्रयेत्यादिना प्रतिपादितमेव
 प्राक् । स्त्रिया एवेति । तथा च कात्यायनैकैक्यतया भार्या
 पुत्रयेत्यादिवचनमप्युक्तद्विविधस्त्रीधनविषयमेव । स्त्रीधना
 करे तु स्त्रीणां स्त्रातव्येण यथेष्टविनियोगेनिःप्रत्यूहएवेति
 भावः । अत्र सम्मादमाह । तदाहेति । आनृशंस्यार्थं अनु
 कम्प्यार्थम् । नचैवं शुल्कलाभयोरसौदायिकत्वात् तत्रास्मा
 तस्य स्यादिति वाच्यम् । पूर्वोक्तकात्यायनवचनेनान्यतो लभ्यस्य
 त्रिष्यलभ्यस्य च द्वयोरेवास्मात्तस्य प्रतिपादनेन एतयोरपि
 स्त्रीधने मध्यपठितयोः स्त्रातव्यावगमात् ॥ ० ॥

सुदायसम्बन्धिभ्योलब्धं सौदायिकं स्थावरेऽपि
 भर्तृदत्तमात्रे स्त्रियादानाद्यनधिकारः । तदाह

नारदः भर्ता प्रीतेन बहसं स्त्रियै तस्मिन्नुतेऽपि तत् ।
 सा यथा काममग्नीयाहयादा स्थावरादते । भर्तृ
 दत्तविशेषणात् भर्तृदत्तस्थावरादते ऽन्यत्स्थावरं
 देयमेव भवति । अन्यथा यथेष्टं स्थावरेष्वपीति
 विरुध्येत । भर्ता तु यदा दुर्भिक्षे स्त्रीधनं विना वर्त्त
 नाक्षमस्तदापि गृहीतुमर्हति नान्यदा । यदाह
 याक्षवल्क्यः दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रति
 रोधके । गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ।
 अन्यत्र पुनरनधिकारमाह ।

कात्यायनः न भर्ता नैव च सुतेन पिता भ्रातरो
 न च । आदाने वा विसर्गे वा स्त्रीधने प्रभविष्णवः ।
 यदि ह्येकतरोह्येषां स्त्रीधनं भक्षयेद्वलात् । सवृद्धिं
 सच दाप्यः स्याद्वण्डश्चैव समाप्नुयात् । तदेव
 यद्यनुज्ञाप्य भक्षयेत्प्रीतिपूर्वकम् । मूलमैव तदा
 दाप्येयदा स धनवान्भवेत् । अथ चेत्स द्विभार्यः
 स्यान्न च तां भजते पुनः । प्रीत्या विद्वष्टमपि चेत्यति
 दाप्यः स तद्वलात् । ग्रासाच्छादनवासानामुच्छेदो
 यत्र योषितः । तत्र स्वमाददीत स्त्री विभागं रिक्थि
 नान्तथा । स्त्रियाधनं गृहीत्वा भर्ता यद्यपरभार्यया
 सह वसति ताञ्चावजानीते । तदा गृहीतं धनं

राज्ञा बलाहायः । भक्ताच्छादनादिकं यदि भर्ता
न ददाति तदा तदपि स्त्रिया आकृत्य ग्राह्यमिति
स्त्रीधनसूत्रम् ॥०॥

स्त्रावरैष्येति यदुक्तमस्त्रापवादमाह । स्त्रावरैष्येति ।
अन्येष्वेति । स्त्रावरमात्रे दाननिषेध इत्यर्थः । तदापीति ।
तद्वैवेत्यर्थः । सन्प्रतिरोधके अस्त्रार्थमुत्तमर्थेन कृते स्त्रान्
भावनाद्यवरोधे । विसर्गे दाने । यासेति । वासोयुद्धन्तश्च
स्त्रमिति स्त्रीकृतं यासाच्छादनादीत्यर्थः । अस्त्रिणां स्त्रभर्तृ
वाधारसूत्राधिकारिणान्देवरादीनां सकाशाद्विभागं स्त्रभ
र्तृयोग्यांश्चाददीतेत्यर्थः । केचित्तु अस्त्रिणां भर्तादि
सम्बन्धिनां सकाशात् स्त्रं विभागं यासाच्छादनादिरूपमाद
दीतेत्यर्थ इति व्याचक्षुः । तदसत् । तच्च स्त्रमित्यनेनैव गता
र्थत्वादिति ॥०॥

इदानीं स्त्रीधनविभागोऽभिधीयते ।

तत्र मनुः ॥ जनन्यां संस्थितायान्तु समं सर्वे सस्रो
दराः । भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः ।
इन्द्राश्वषणोऽपि तत्तुल्यार्थकचकारेण धातृभगिन्यो
रितरेतरयुक्तयोर्विभागप्रतिपादनाद्भगिन्यः सोद

राश्व विभजेरन्नित्ययमेवास्त्वचनस्यार्थः । वृक्षस्यति
रपि चकारात्समुच्चयमाह ।

स्त्रीधनस्तदपत्यानान्दृष्टिता च तद्दृष्टिनी ।
अप्रप्ता चेत्समूढा तु न लभेन्मातृकन्धनम् । अपत्य
पदस्युत्रपरं । तेषामप्रप्ताभिर्दुष्टितृभिः सह मातृधन
विभागः ।

तथाच शङ्खलिखितौ समं सर्वे सोदर्याद्रव्य
मर्हन्ति कुमार्यश्च सर्वेचैव प्रथमस्युत्रोपादानात्
सर्वावस्थस्य पुत्रस्य मातृधनेऽधिकारः । चकार
श्रुतिश्च सर्वत्रानुगता समुच्चयवाचिका । एतावता
पुत्रादमक्षस्य देवलवचनं गलदस्तः ॥ ० ॥

इदानीं स्त्रीधननिरूपणानन्तरमित्यर्थः । सममिति ।
विभोद्धारनिषेधाच्च । भगिन्योद्देशाः समाभयः सहोदराः ।
अत्र वचने इन्द्रश्रुतिर्नास्ति येन तदवगतवाहित्यवत्तेन भगि
नीभ्रात्रेर्गुणपदधिकारः स्यात् । किन्तु । कमेणैव तयोरेधि
कारः । कमस्य न पाठिकः । किन्तु प्रथमभगिन्याः ततो
भ्रातृरित्येवं रूपः । मातृदुष्टितुरभावे दुष्टितृणान्दन्वय
इत्यादिनारदादिवचनेषु बलवतः शान्दकमस्य प्राप्तेरिति
केवास्तिन्नतस्तदपाकर्तुमाह । इन्द्राश्रवणेऽपीति । तन्मुखा

येति । चार्थेदन्द्दत्युक्तेर्दन्द्दमानार्थता चकारस्य । पुत्रपर
मिति । दुहितुः पृथगुपादानुपपन्नकस्य साधिकाराभावा
दिति भावः । सर्ववस्यस्येति । सर्ववस्यस्येत्यर्थः । अत्र सप्तो
दरपदाद्युपादानात् । कन्यासत्त्वे दत्तकादीनामाधिकारः
दुहितृपेक्षया पक्षमाद्यंशभागिता पुन्धनवदिति केचित् ।
एतावतापि उक्तक्रमेण दौगपद्यावगमेऽपि । उद्गाहमल्लस्य
उद्गाहोवाद् सच चकारश्रुतिबलान्न तयोर्विभागे साहित्याव
गमः । ग्रीहियवपाकोचेत्यादाविव भिन्नकालीनयोरप्येक
जातीयक्रियासम्बन्धमात्रेण तस्याश्रितार्थत्वात् । अन्यथा ।
पत्नीदुहितरस्येत्यादौ चकारश्रुतिबलेन पत्नीदुहितोरपि
पृथगपदधिकारापत्तेरित्येवं रूपः तत्र मल्लस्य समर्थस्य गल
हसस्तन्निराकरदत्यर्थः ॥ ० ॥

यथा सामान्यमुत्रकन्यानां मृतायां स्त्रीधनं
स्त्रियाम् । अप्रजायां हरेर्दन्ता माता भ्राता पिता
पिवा । इह पुत्रकन्ययोः साधारणं मातृधनमिति
सुव्यक्तम् । केवलकुमार्याः सकलमातृधनाधि
कारित्वे च यौतकधने विशेषवचनं मन्वादीनाम
नर्थकं स्यात् । सर्वत्राधिकाराविशेषात् । यः पुन
रेवं समाधानं ब्रूते । भ्रातृभगिन्योस्तुल्यवज्जन
नीधनाधिकारित्वे समभागविधानं युक्तम् । केवल

किञ्चेति । विभक्तादिति । एकत्र प्रतिवासिनोयदा विभ
ज्युः तदा यतोयस्मात् । एकत्र प्रतिवासिनोभ्रात्रादेरुदयः
धनार्जनं स पुनर्विभागे द्वांशं लभेत इत्यर्थः । द्वांशः स्वार्षित
एव अर्जकोद्वांशमर्हतीत्येकमूलकत्वात् । इतरेषामेकैको
भागः । एकैकस्येति शेषः । मुनेः कात्यायनस्य । तेन एकत्र
प्रतिवासित्वा साधारणधनोपघातेन द्विग्नित्वस्य प्रतिपादित
त्वात् । अनुपघातार्जिते भागानभिधानात् । व्याख्यातुः श्रीक
रस्य । तेन तथैव स्फुटं व्याख्यातत्वात् । अभिप्रायस्यकाश
यति । अनुपघातइति । एवञ्चैदुपघातार्जिताभिप्रायस्येत् ।
तथात्वं द्विग्नित्वम् । अविभक्तत्वे विभागप्रागभावः संसृष्टत्वे
विभागप्रध्वंसः । एकत्र प्रतिवासस्य अभिन्नधनसम्बन्धस्य ।
ननु वचनबलात् संसृष्टधनविषयत्वप्रतीतेस्तद्धिरोधात्कुतो
ऽविभक्तविषयत्वकल्पनमतावचनमन्यथापपादयति । साधा
रणेत्यादि । न केवलमित्यत्र हेतुमाह । हेलाकंति । तथाच
अथा हेलाकनुष्ठानार्थं हेलाका कर्तव्येति श्रुतिः कल्प्यते
न कर्तृबोधकप्राच्यादिपदवती । तथा साधारणधनोपघा
तेनार्जिते अर्जकोद्वांशं गृहीयादित्येव श्रुतिः कल्प्यते न त्वर्थ
कविशेषणतया संसृष्टपदवतीति भावः । तथाचारे पदवैयर्थ्य
रूपबाधकाभावात् सामान्यश्रुतिकल्पनमस्तु स्मृतौ तु तथात्वे
विशेषणवैयर्थ्यमिति विशेषाकारैव श्रुतिः कल्प्यतइत्यतश्चाह
॥०॥

किञ्चोपघातार्जिते अर्जकस्य भागद्वयमिति
तावन्निर्विवादम् ।

साधारणं समाश्रित्य यत्किञ्चिद्दाहनायुधं ।
शौर्यादिनाप्नोति धनं भ्रातरस्तत्र भागिनः । तस्य
भागद्वयं देयं शेषास्तु समभागिनः । इत्यनेनोप
घातएव भागद्वयस्य विधानात् । असाधारणधन
शरीरव्यापारमात्रार्जिते तु न भागद्वयं न्याय्यम् ।
किन्त्वधिकं सर्वमेव वा किञ्चिदूनं वा । तत्र किञ्चि
दूनस्य मुनिभिर्निबन्धुभिश्चानुक्तत्वात् । साधारण
धनव्यापारेण भ्रात्रन्तरस्य भागनिर्गमात् । तद्
भावे भागाभावएव युक्तः । द्विरर्जयितुरित्येतस्य
च न्यायमूलत्वमेव युक्तम् । अन्यथा श्रुतिकल्पने
अर्जकत्वानुप्रवेशोवा पृथग्वाधिकारो कल्पनीयः
स्यात् । तस्मादनुपघातार्जितमर्जकस्यैव नेतरेषा
मिति सिद्धम् ॥ ० ॥

किञ्चेति । किन्त्वधिकमिति । भागद्वयाधिकमित्यर्थः ।
अधिकस्यैव द्वैविध्यमाह । सर्वमेववेति । किञ्चिदूनमिति च ।
सर्वमिति शेषः । भागनिर्गमादिति । भागश्रवणादित्यर्थः ।
तदभावे भ्रात्रन्तरभागनिर्गमहेतुत्वेन साधारणधनोपघात

भाष्यकारस्यापारधोरभावे । ननु अर्जकोऽङ्गमर्हति चेन्न तेषा
 मृत्पादितं स्यात् स अङ्गमेव हरेदित्यादौ सामान्यतएवार्ज
 कतया अङ्गश्रुतेरनुपघातेऽपि अङ्गएवार्जकस्यास्त्वमतश्चाह ।
 द्विरर्जचितुरिति । एतस्य एतदर्थकस्य । अर्जकोऽङ्गमर्हती
 त्यादेर्न्यायमूलत्वं यत्रैकस्य धनदारेणापरस्य धनशरीराया
 साभ्यामित्युक्त्युक्तिमूलत्वम् । अन्यथा न्यायमूलत्वे अर्ज
 कत्वानुप्रवेशोऽवेति । पिता गृहीतांशदयं स्वयमिति मूलश्रुता
 वर्जकत्वविशेषणप्रवेश इत्यर्थः । नन्वेवं अर्जकः पिता अङ्गं गृही
 यादिति श्रुतिकल्पने पितुरनर्जकस्य अङ्गानुपपत्तिरर्जकस्य
 भावादेर्द्विगुणानुपपत्तिश्चेत्यतश्चाह । पृथग्वेति । पित्रत्वादिनि
 रपेक्षः पृथगर्जकएवाधिकारी कल्प्यः स्यात् । तथा चेन्नभय
 चैव श्रुतिकल्पने गौरवात् न्यायमूलत्वमेव युक्तमिति भावः ।
 उपसंहरति । तस्मादिति । ननु न्यायमूलत्वे अर्जकस्य व्यापार
 तारतम्येन विभागतारतम्यं स्यात् । तथाच सामान्यतएव
 तस्य भागद्वयाभिधानमयुक्तमताऽविभक्तार्जिते अर्जकस्य
 भागद्वयमितरेषामेकैकाभाग इति सामान्यश्रुतिमूलत्वमेवा
 चितमर्जकङ्गमित्यस्य । अतएवानुपघातार्जितेऽपि प्रतियहधने
 अविभक्तार्जितत्वमात्रेण सर्वेषां विभागोलोके दृश्यते इति
 श्रीकरमतमुत्तोऽस्य दूषयति ॥ ० ॥

किञ्चाविभक्तार्जितं सर्वे विभजेयुरिति न
तावत् सामान्येन वचनं कल्पनीयम् । शौर्यादि
धनपर्युदासदर्शनात् ।

तथा मनुः । विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव
धनम्भवेत् । मैत्रमौदाहिकश्चैव माधुपर्किकमेव च ।

तथा मनुविष्णू । अनुपपन्नं पितृद्रव्यं अमेण
यदुपार्जितम् । स्वयमीहितलब्धन्तन्नाकामोदातु
मर्हति । अनुपपन्नमिति विद्यादिधनेऽपि सम्बध्यते ।
सत्युपघाते विभागवचनदर्शनात् ।

•तथा याज्ञवल्क्यः । पितृद्रव्याविरोधेन यद्
न्यत्स्वयमर्जितम् । मैत्रमौदाहिकश्चैव दायादानां
न तद्भवेत् । क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हतमभ्युदरेत्तु यः ।
दायादेभ्योन तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ।

तथा नारदः । शौर्यभार्याधने हित्वा यच्च विद्या
धनम्भवेत् । शीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसादोयश्च
पैतृकः ।

तथा व्यासः । विद्याप्राप्तं शौर्यधनं यच्च सौदा
यिकम्भवेत् । विभागकाले तत्तस्य नान्वेष्टव्यं स्वरि
विथभिः । सौदायिकं सुदायसम्बन्धिभ्योयत्तन्मम् ।

पितामहेन यदक्षं पित्रा वा प्रीतिपूर्वकम् । तस्य
तन्नापहर्तव्यं मात्रा दत्तञ्च यज्ञवेत् । अनाश्रित्य
पितृद्रव्यं स्वशक्त्याप्नोति यद्वनम् । दायदेभ्योन
तद्व्यात् विद्यालब्धञ्च यज्ञवेत् ॥०॥

किञ्चाविभक्तेत्यादि । शौर्यादिधनेति । अनुपघातार्जित
शौर्यादिधनइत्यर्थः । सम्बध्यतइति । विद्याधनन्तु यद्यस्येति
प्राग्वचनोक्तविद्याधनेऽपि सम्बध्यतइत्यर्थः । वैद्याऽविद्यायेति
प्रागुक्तवचने पितृद्रव्यं समाश्रित्य न चेत्तेन तदर्जितमिति
श्रुतेरत्रापि तर्देकवाक्यतया विद्याधनेऽप्यनुपघातान्वयइति
भावः । क्रमादभ्यागतमिति । क्रमादागतमित्यर्थः । एतच्चा
साधारणमात्रोपलक्षणम् । तेन भ्रातृणां स्वार्जितधनेऽपीयं
व्यवस्था । उद्धरेदित्येकवचनेन अन्येषां कायिकव्यापारस्या
भावउक्तः ॥०॥

तदेवमादिभिर्वचनैर्यावद्वर्णवर्णान्तरालानां
सङ्कीर्णजातानां सकलविद्यानिमित्तस्य सौदायि
कस्य च स्वजनदत्तस्य च तथा मैत्रविवाहमधुप
र्कप्राप्तस्य शौर्येण च युद्धादिना प्राप्तस्य कृपिसेवा
बाणिज्यादिना च श्रमेणोपार्जितस्यानुपघातेन च

स्वशक्तिमात्रार्जितस्य पर्युदासात्सर्वमेव पर्युदस्त
मिति । तदितराभावान्निर्विषयोविधिः । अथ यथा
कथञ्चिदेकोदिकोवा विषयोलभ्यते तदा तदेव
स्वपदेन निर्देष्टुमुचितं मुनीनाम् । अविभक्तार्जित
ममुकधनं विभजेदिति लाघवात् स्वपदात् शीघ्र
प्रतीतेश्च । नतु शौर्यादिधनेतरतया वज्रतरपद
प्रयोगापत्त्या गौरवात् । पर्युदासत्वे च सर्वमुनि
भिरेव सकलपर्युदसनीयपदानुकीर्त्तनं कर्त्तव्यम्
तद्विना तदितरज्ञापनानुपपत्तेः । मुनीनां पर्युदा
सवचनं बालप्रलपितमिव स्यात् ॥०॥

यावदर्थेति । वर्षाः ब्राह्मणादयश्चत्वारः वर्षान्तराणां
अम्बष्ठकरणादयः । सङ्कीर्णजातारथकारादयः । सर्वमेवेति ।
अनुपघातार्जितसर्वमेवेत्यर्थः । निर्विषयोविधिरिति । अनु
पघातेन शौर्याद्यर्जिततत्तद्धनेतरदविभक्तार्जितं विभजेदिति
विधिर्भवदभिमतः । सच निर्विषयः यादृशमप्राप्तविषयमप्राप्य
विधिलं तादृशविषयशून्यः । अत्र हेतुः तदितराभावादिति ।
न्यायप्राप्तेतरस्य विषयस्याभावादित्यर्थः । उपघातार्जित
विभागस्य तु न्यायतएव प्राप्तत्वमिति भावः । नन्वविभक्तस्य
निधिरकोऽस्ति विषयः रूपयोदासीनदत्तं आदाय द्विकोवा

वर्त्तते । एतयोऽन्त्याधाराधनव्यापारानर्जितत्वेन तदि
भागस्य न्यायादप्राप्तेरिति तत्कथं तदिष्यत्वमित्याशङ्कते ।
अथेति । स्वपदादिशेषरूपेण स्वबोधकपदात् । नतु शौर्या
दीति । नलनुपघातेन शौर्याद्यर्जितेतराविभक्तार्जितधनतथे
त्यर्थः । बद्धतरपदेति । पदार्थस्य वाक्यार्थतया वाक्यघट
कपदार्थानामुपस्थितौ तदन्वितान्वयक्रमेण प्रकृतोपस्थिति
रिति विलम्बोपस्थितिकत्वादित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् ।
पदार्थोपस्थित्यादिकल्पनागौरवमपि द्रष्टव्यम् । बालप्रल
पितमिति । विद्याधनेतरदिभजेत् शौर्यादिधनेतरदिभजे
दित्यादिप्रत्येकाभिधाने कस्मादप्यभिधानान्न विभाज्यता
वच्छेदकस्य उक्ततावद्भनेतराविभक्तार्जितधनत्वस्य परिचयः ।
तथाच । तादृशधनविभागस्य प्रकृतस्याप्रतिपादकतया
निरर्थकत्वेन बालप्रलापतुल्यत्वात् । बालप्रलपितमि
त्यर्थः ॥ ० ॥

प्रदर्शनार्थत्वे त्वनास्थया केन चित्किञ्चित्कीर्त्ति
तम् केनचिच्च किञ्चिदिति युक्तं सर्वस्याकीर्त्त
नम् । तस्मात्साधारणधनोपघातार्जितन्धनं विभ
जेदिति विधिः । शौर्यादिपदञ्च वाक्येषु प्रदर्शना
र्थम् । अतोऽविभक्तार्जितत्वमात्रेण धनस्य साधा
रणत्वाभिधानमप्रामाणिकम् ।

किञ्च क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हतमभ्युदरेत्तु
 यः । दायादेभ्योन तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ।
 अत्र याज्ञवल्क्यवचनेऽपि पितृपितामहादिधन
 मपि केनचिदपहृतं योऽभ्युदरेत्तस्यैव तन्नान्येषामिति
 भवतोऽपि संमतं । तेन पूर्वसंस्वन्धलेशे सत्यपि अवि
 भक्तानामप्यभ्युद्धारकत्वेन तत्र संस्वन्धं निराकुर्वन्न
 पूर्वत्वेन सार्जिते सुदूरमेवान्येषां संस्वन्धं निर
 स्यति । यच्चोक्तं श्रीकरेण । यदि पितृद्रव्यानुप
 घातार्जितमर्जकस्यैव तत्तदा प्रतिग्रहोपात्तं
 धनन्न कदाचित् भ्रात्रन्तरस्य भवेन्नहि प्रतिग्रहः
 पितृद्रव्यविनाशेन भवति । द्रव्यं हि दातुरानमन
 मुखेन प्रतिग्रह उपयुज्यते ॥ ० ॥

मन्मते अनुपघातार्जनं यत्र यत्र धने सम्भवति तत्तदुदाहर
 णार्थत्वेन नानर्थक्यमित्याह । प्रदर्शनार्थत्व इति । अथात्र
 निषेध एव न पर्युदास इत्येकेन सर्वाकीर्त्तनेऽपि न क्षतिरित्यत
 आह । किञ्चेतीति चूडामणिसूत्रम् । वाक्यभेदकल्पनागौरवा
 यत्तेः पर्युदासस्यैव न्याय्यत्वात् । किन्तुपघाताभावे विभागा
 भाव इति प्रागुक्तेः । युक्तान्तरमाह किञ्चेति । अविभक्तानाम
 पीति । अविशेषेण वचनस्य विभक्ताविभक्तविषयत्वादित्याश्रयः

अपूर्वत्वेन पूर्णसम्बन्धलेन प्रसूत्यत्वेन । पिष्टद्रव्यविनाशभावाद्
ब्रजति । द्रव्यं हीति । आनमनं यन्मोघः मुखेन दारेण ॥ ० ॥

एकहायन्यादिकमिव क्रये कर्तृशरीरधारणेन
वा ५ पयोव्रतादिकमिव ज्योतिष्टोमे' तत्र तावद्
दृष्टार्थे दाने न द्रव्यान्तरग्रहणे न दातुरानतिर
पेक्षितेति न दात्रानत्या द्रव्यमुपयुज्यते प्रतिग्रहस्या
ल्पकालीनत्वान्न तत्कर्तुर्भोजनमपेक्षितम् । दीर्घ
कालीनज्योतिष्टोमेनेव स्वर्गकर्तुरिति तन्मन्दम् ।
दापकानत्यर्थमुपहारप्रदानादिना धनोपघातस्य
लोकवज्जलमुपलम्भात् । कलौ च प्रतिग्रहधनस्य
सेवाधनसमानत्वात् अतएव कलौ त्वनुगमान्वित
इति स्मरन्ति ॥ ० ॥

एकहायन्यादिकमिति । अरुणया एकहायन्या पिङ्गाद्या
सोमं क्रीणातीत्यत्र विक्रेतुर्वशीकरणद्वारा यथैकहायनीमुख्य
तथा उक्तक्रमोपयोगिनी तद्वदित्यर्थः । आदिना वाससा क्रीणा
तीत्युक्तवाससः परियहः । शरीरधारणमन्तराप्रकृतकर्षण
इतिशेषः । अतएव दूषयिष्यति । प्रतिग्रहस्य चेति । नच
वाससोगोवैकल्पिकत्वं विषममिष्टत्वात् । तथाच वासोविषम

त्रिष्टया एकस्या एव गीः कथसाधनत्वात्पृथक्किंवासाधनस्य
 वाससः कथमादिपदयाञ्चत्वं वाससा सोमं क्रोषातीति इष्टम्
 वाक्त्वसलेन वासोविशिष्टगवा क्रये प्राग्रस्यावगमात्प्रशस्तक्रये
 वासोविशिष्टाद्यागोरादिपदयाञ्चत्वसम्भवात् । पश्यान्तर
 क्रये मूच्यतयोक्तमुपर्णादिपदयाञ्चत्वसौलभाच्च । पयोव्रतादि
 कमिवेति । दीर्घकालीनज्योतिष्टोमादौ पयःपानम्प्राज्ञाणस्ये
 त्यनेनाभिहितं शीरभोजनादिकं यथाशरीरधारणद्वारो
 पयुज्यते तददित्यर्थः दयं क्रमेण दूषयति । तत्रेत्यादि । प्रति
 ग्रहस्येत्यादिच । दीर्घकालीनज्योतिष्टोमस्यानेकाहमाथ्य
 त्वात् शरीरधारणार्थं यागकर्तुंर्यथा भोजनमपेक्षितन्तथा
 प्रकृतेनेति व्यतिरेकदृष्टान्तः । उपहारप्रदानादिना पारि
 तोषिकद्रव्यदानादिना उपदानादिनेति पाठे उत्कोचदाना
 दिनेत्यर्थः । कलौचेति तेन सेवया वज्रतरकालमाथ्य
 त्वात् । शरीरधारणार्थमपि धनोपघातः काचित्कदत्युक्तम् ।
 अनुगमेति । अनुगम उपसर्पणं तेनान्वियते दीयते इतिअन्वयः ।
 तथाचोक्तं कृते तु दीयते गत्वा चेतायामाज्जताय वै । दापरे
 याचमानाय कलौ त्वनुगमान्विते इति ॥ ० ॥

यच्च चिरावस्थितेर्व्यभिचारान्न प्रतिग्रहकारणत्व
 मानतेरतश्चानतिद्वारा न प्रतिग्रहार्थत्वद्रव्यस्येति

प्रोक्तान्मन्दतरम् । आनतिद्वारेण चिराश्रय
णादीनामप्रतिग्रहकारणत्वात्पुरुषस्याश्रयवैचित्येण
कस्यचिद्वनदानेन कस्यचिच्चिराश्रयणादिना
कस्यचिद्गुणानुसन्धानमात्रेणैदर्शनात् । सह
कार्यभावेन कार्यानुत्पत्तेर्नाकारणता । अतएवो
क्तम् । आनतेरनियतोपायपरिणामत्वात् यद
प्युक्तम् । अथ तत्सन्निधिमन्तरेण प्रतिग्रहस्यासम्भ
वात् । भोक्तृमन्तरेण च तदयोगात् । तस्यां
स्थितौ व्याप्रियमाणन्धनमण्याल्या प्रतिग्रहं निव्या
दयतीति ॥०॥

चिरावस्थितेरिति । चिरावस्थितेरपि प्रतिग्रहदर्शनादान
तेर्यभिचारान्न कारणता इत्यर्थः । आनतिद्वारेण आनति
द्वारेणैव नतु स्नातव्येण तेन नानतेर्यभिचारइति भावः ।
चिराश्रयणादीनामित्यादिना धनदानगुणानुसन्धानयोः
परिग्रहः ननु चिराश्रयणादीनामपरस्परव्यभिचारेण कथ
मानतिग्रति कारणतेत्यतश्चाह । पुरुषाश्रयेति । पुरुषाश्र
यस्य भावस्मानतिरूपस्य वैचित्येणेत्यर्थः । तथाचानतिगतवै
जात्यव्यक्तीनां प्रत्येकस्य चिराश्रयणादीनां कार्यतावच्छेद
कत्वाच्च व्यभिचारइति भावः वस्तुतएवामेकवृत्तिमत्त्वेनैव

कारणत्वं तेनातिगतानावैजात्यकल्पने न स्तिरिति
 बोध्यम् । दर्शनादिति । आनतेरिति शेषः ननु तथाप्यन्यथ
 व्यभिचारः सत्यपि चिराश्रयणादौ कस्य चिदानत्यनुत्पा
 दादतश्चाह । सहकार्येति पुरुषाश्रयविशेषः सहकारी तद
 भावात्तत्र नानतिरिति व्यभिचारइति भावः । केचित्तु ननु
 सत्यामप्यामतौ कश्चित्प्रतिग्रहाप्राप्त्या कथमानतेः प्रतिग्रह
 कारणत्वमतश्चाह । सहकार्येतीत्याहुः । अनियतोपायेति ।
 परस्परनिरपेक्षानोपायसाध्यत्वादित्यर्थः तेनैकशक्तिमत्त्वा
 द्वैजात्यादा कार्यकारणभावइति भावः । श्रीकरेणैव प्रति
 ग्रहे प्रकारान्तरेण पितृद्रव्योपघातमावदितं यत्प्रतिबन्धि
 मुपन्यस्य निरसितस्तदपि दूषयितुमाह । यदप्युक्तमिति
 निष्पादयतीत्यन्तं यदप्युक्तमित्यर्थः । तस्यां स्थितौ प्रतिग्रहा
 वधिदानवृषत्रिधिस्थितौ । प्रणाल्या परस्परया ॥ ० ॥

तदा ज्योतिष्टोमादिकर्मणः प्राचीनमपि
 भोजनं शरीरस्थितौ । व्याप्रियमाणम्प्राचीनशरीर
 स्थितिमन्तरेण ज्योतिष्टोमाद्यनिष्पत्तेः । प्रणाल्या
 ज्योतिष्टोमार्थत्वमित्यपि सर्वमेव भोजनं क्रत्वर्थं
 स्यान्न पुरुषार्थं । तथाच । तत्साधनमपि द्रव्यं
 क्रत्वर्थं स्यात् । तदर्जनोपायोऽपि क्रत्वर्थं स्यादिति

वधिरौ तथा । उन्मत्तजङ्गमूकाश्च येष केचिन्निरि
न्द्रियाः ।

स्त्रीवश्च कात्यायनेन दर्शितः । न मूर्च्छं फेनिष्ठं
यस्य विष्ठाचासु निमज्जति । मेघश्चोन्मादशुक्राभ्यां
हीनः स्त्रीवः स उच्यते । जातिपदमन्धवधिराभ्यां सम्ब
ध्यते । वर्णानुच्चारकोमूकः वेदग्रहणासमर्थो जडः ।

तदाह याज्ञवल्क्यः ॥ पतितस्तत्सुतः स्त्रीवः
पङ्कुरन्मत्तको जडः । अन्धोऽचिकित्सरोगार्त्तैर्भर्त्त
व्यास्ते निरंशकाः । पङ्क्षा न गच्छतीति पङ्कुः निरं
शकत्वेऽपि पतितस्तत्सुतव्यतिरिक्ताभर्त्तव्याः ।

तदाह देवलः ॥ मृते पितरि न स्त्रीवकुष्ठ्यन्मत्त
जडान्धकाः । पतितः पतितापत्यं लिङ्गी दायांशभा
गिनः । तेषां पतितवर्जेभ्योभक्तवस्त्रं प्रदीयते ।
तत्सुताः पितृदायांशं लभेरन्धोषवर्जिताः । लिङ्गी
प्रव्रजितादिः । पतितपदेन तत्सुतस्याप्युपादानस्य
पतितोत्पन्नत्वेन पतितत्वान् ।

तदाह बौधायनः ॥ अतीतव्यवहारान् घ्रासा
च्छादनैर्विभृयुः अन्धजडस्त्रीवव्यसनिव्याधितादीं
श्चाकर्म्मिणः पतिततज्ज्वातवर्जम् ।

तत्र मारदः ॥ पितृद्विष्ट पतितः अपण्डितश्च स्या
दौपपातिकः । औरसाश्चपि नैतेशं लभेरन् क्षेत्रजाः
कुतः ।

आह कात्यायनः ॥ अक्रमोढासुतश्चैव सगोत्रा
द्यस्तु जायते । प्रव्रज्य विवसितश्चैव न रिक्थन्तेषु चा
र्हति ॥ ० ॥

विकर्षणः । और्द्धदेहिकस्य कर्मणोविरोधीनि यानि
कर्मणि अगम्यागमनादीनि तत्कारिण इत्यर्थः । जन्मार्थकं
जातिपदमित्यर्थः । तेन जन्मान्धजन्मबधिरावित्यर्थः । तत्सुत
इति । पातित्यागन्तरमुत्पादितसुत इत्यर्थः । यद्यपि पतित
पुत्रस्यापि पतितत्वमेव तथापि तस्य पृथगुपादानन्तदितरेषां
क्रीवादिपुत्राणामङ्गित्वज्ञापनार्थमिति । नच पातित्यागन्तरो
त्पन्नपतितत्वेनैव प्राप्तस्तत्सुत इति प्रागुत्पन्नपतितपुत्रसंयहार्यं
मित्येव किञ्च स्यादिति वाच्यम् । क्रीवादिपुत्राणामिव तस्यापि
निर्दोषत्वात् । विभागार्चताद्यान्वाद्यन्तान्निषेधस्य वाचमि
कत्वे चाहृष्टार्थकल्पनागौरवायत्तेः । अचिकित्सरोगार्त्त इति
कुतेर्घदि विभागानन्तरमौषधादिना रोगनिवृत्तिस्तदा तस्या
अङ्गित्वमेवेति प्रतिपत्तव्यम् ॥ ० ॥

॥ औनवर्षस्त्रीपरिणयमानन्तरमुत्तमवर्षस्त्रीप

रिक्त्वने दयोरप्यक्रमोदात्मकायोः सगोचरात्
नियुक्तादुत्पन्नः क्षेत्रजः पुत्रो नार्हति धनं अक्रमो
दायामपि सर्वर्णेन परिणेतव्यादितः पुत्रोधना
धिकारी । क्रमोदायामसर्वर्णजातोपि ।

तदाह कात्यायनः अक्रमोदासु तस्त्वृक्षी
सर्वर्णश्च यदा पितुः । असर्वर्णप्रसूतश्च क्रमोदाया
स्तु यो भवेत् । प्रतिशोमप्रसूतायास्तस्याः पुत्रेन
रिक्त्वभाक् । यासाच्छादनमात्रं तु देयं यद्वन्धुभिः
कृतम् । वन्धूनामप्यभावे तु पितृयं द्रव्यं तदाप्नुयात् ।
स्वपितृयन्तद्वनम्प्राप्तं दापनीया न बान्धवाः । अस्ति च
स्त्रीवादीनां दारपरिग्रहः ।

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात् स्त्रीवादीनां कथञ्च न ।
तेषामुत्पन्नतन्तूनामपत्यं दायमर्हति । तन्तुर
पत्यम् । न चापुंस्त्वात् स्त्रीवस्य जननासामर्थ्यात्
अध्ययनाभावात् मूकादेरुपनयनाभावेन पतित
त्वात्कथं दारसंबन्ध इति वाच्यम् । स्त्रीवस्य पत्न्या
मन्येन पुत्रोत्पादसम्भवात् उपनयनानर्हस्यानुप
नीतत्वे शूद्रवक्ष्यतितत्वात्तेनैतेषां यथा सम्भवमौर
सक्षेत्रजाः स्त्रीवत्वादिशून्याः स्वपितृनुक्षेत्रेण
भागधारिणः ॥ ० ॥

अथर्वणतोऽपीति । उत्तमवर्णेनाथमवर्णायामुत्पादितो
 नीत्यर्थः प्रतिलोमेति । होमवर्णेनाथमवर्णायामुत्पादितो न
 पृथग्भागित्यर्थः । बन्धुभिः तस्य पितृपृथग्यादिभिः तत्पितृ
 भ्रात्रादिभिः । स्वपितृमिति । यदा बन्धुभिः स्वपितृमेव धनं
 प्राप्तञ्च तु तत्पितृधनं प्राप्तन्तदा तद्भाषाच्छादनं राज्ञा
 बान्धवा न दापनीयाः । अपितृमिति पाठे प्रतिलोमजस्य न पितृ
 सम्बन्धितेति स एवार्थः । तथाच प्रतिलोमजाय यासां श्चाद
 नस्वन्धुभिस्तत्पितृधनं प्राप्तावेव देयं बान्धवेत्यर्थः । क्रीवादेर्दौर
 परिग्रहसम्भवात् कथमुच्यसम्भवदत्याशङ्कामपनेतुमाह ।
 अस्ति चेति । यथा सम्भवमिति । भूकादेरौरसस्य क्षेत्रजस्य
 च सम्भवः क्रीवस्य तु क्षेत्रजमात्रस्य सम्भवदिति । स्वपित्रनुषारे
 षेति । स्वपितृर्मातृपुत्रपुत्रव्यापुत्रत्वादिना यादृशोभाग
 स्तादृशभागश्चारिण इत्यर्थः ॥ ० ॥

दुहितरश्च परिणयनं यावद्भर्तव्याः अपुत्राश्च
 स्त्रियोयावज्जीवम् ।

यदाह याज्ञवल्क्यः ॥ औरसक्षेत्रजास्त्रेषां नि
 र्हीषाभागश्चारिणः । सुताश्चैषां प्रभर्तव्यायावदै
 भर्तृसात्कृताः । अपुत्रायेषितश्चैषां भर्तव्याः
 साधुवृत्तयः । निर्वास्याव्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्त
 यैव च ॥

सम्प्रति विभाज्यमविभाज्यं शोच्यते ।

तत्र कात्यायनः । पैतामहश्च पितृ च यच्चान्य
स्वयमर्जितम् । दायादानां विभागे तु सर्वमेत
द्विभज्यते । यच्चान्यदिति चकारः स्वयमित्यनेन
सम्बध्यते । स्वयञ्चार्जितमिति चकारादन्यस्यापि
तदर्जनं साधारणदारेणेत्यर्थः । अनुपघातो
पात्तमविभाज्यमाह तुर्मनुविष्णूः । अनुपघ्नन् पितृ
द्रव्यं अमेण यदुपार्जितम् । स्वयमीदितलब्धन्तन्ना
कामोदातुमर्हति । पितृद्रव्योपघाताभावेन द्रव्य
दारेणेतरेषां व्यापारः स्वचेष्टालब्धत्वेन शरीरेपि
व्यापारोनेतरेषामिति अर्जकस्यैव तदसाधारण
स्वयमीदितलब्धन्तदिति हेतुत्वेनोपन्यासात् ।

तथाच व्यासः । अनाश्रित्य पितृद्रव्यं स्वशक्त्या
प्राप्ति यद्वनम् । दायादेभ्योन तद्दद्यादित्यालब्धन्तु
यद्वनम् । स्वशक्तिमात्रेण यदर्जितमिति सामान्ये
नाभिधानात् सर्वमेवंविधमसाधारणं द्रव्यं । स्वश
क्तिप्राप्तस्यापि विद्याधनस्य समाधिकविद्यैः साधा
रण्यात् ॥००॥

आवच्छेदमिति । भर्तृव्यादिति पूर्वेषामवयवः । भर्तृव्यात्कुला
इति । तेन तेषां विवाहोपपन्नं कारयितव्यमिति प्रतिपन्नम् ॥
अथानि स्त्रीवादिभिश्चलेनाधिकारिनिरूपणानन्तरमित्यर्थः ॥
पैतामहश्चेति । सम्बन्धिधनमात्रोपलक्षणम् । साधारणधन
द्वारेणेति । स्त्रीरश्ममसाधारणेनापि बोध्यन्त्येव वक्ष्यमाण
मात् । स्वयं स्वधनमममाचार्जितम् । असाधारणं भावन्त
रैरविभाज्यं । ननु विद्यालब्धस्य पृथगुपादानं व्यर्थम् । अना
मिष्येति सामान्याभिधानेन तस्यापि प्राप्तेरतस्तत्प्रयोजन
माह । स्ववृत्तिप्राप्तस्यापीति ॥ ० ॥

न्यूनविद्याविद्यनिराकरणार्थं विद्यालब्धपदम् ।

तथा याज्ञवल्क्यः । पितृद्रव्याविनाशेन यद्
न्यत्स्वयमर्जितम् । मैत्रमौदाहिकश्चैव दायो
दानां न तद्भवेत् । मैत्रादिग्रहणम्यदर्शनार्थं
एवमादिषु प्रायेणानुपघातसम्भवात् ।

तथा मनुः । विद्याधनन्तु यद्यस्य तत्तस्यैव
धनम्भवेत् । मैत्रमौदाहिकश्चैव माघुपर्णिकमेव च ।

तथा च व्यासः । विद्याप्राप्तं शौर्यधनं यच्च
सौदायिकं भवेत् । विभागकाले तत्तस्य नाम्येष्टव्यं

स्वरिविद्यभिः। पितृपितृव्यादिभ्यः सुदायसम्बन्धिभ्यः
प्रसादादिना लब्धं सौदायिकम्।

तथाच नारदः। शौर्य्यभार्य्याधने दित्वा यच्च
विद्याधनम्भवेत्। त्रीण्येतान्यविभाज्यानि प्रसा
दोयस्य पैतृकः। भार्य्याप्राप्तिकाले लब्धभार्य्याधनम्।
औदाहिकमित्यर्थः। एतानि वर्जयित्वा अन्यदि
भजेदित्यनुवर्त्तते वाक्यान्तरीयम्। तदेवमादिभिः
शौर्य्यादिधनत्वमविभाज्यत्वे कारणेनोच्यते। शौर्य्या
द्यर्जितस्यापि विभागश्चतेः।

तथाच व्यासः साधारणं समाश्रित्य यत्कि
ञ्चिदाहनायुधम्। शौर्य्यादिनाप्नोति धनं भ्रातर
स्तत्र भागिनः। तस्य भागद्वयं देयं शेषास्तु सम
भागिनः। साधारणद्रव्येणार्जितस्य धनस्य विभागं
वदति।

नारदः। कुटुम्बं विभृयाद्भातुर्योविद्यामधि
गच्छतः। भागं विद्याधनात्तस्मात्स लभेतामुतोऽपि
सन् ॥०॥

निराकरणार्थमिति। तद्यथा विद्यालब्धस्य न्यूनविद्यैर्न
विभागः तदन्येषां तु तथाविधानां केनापि सह न विभाग

इति भागस्य वैविध्यैकविध्यभावात् तस्य पृथगुपन्यास इति भावः । नच साधारणधनसम्बन्धेनापि विद्यार्जिते विभाग निषेधार्थ एव किञ्च स्यादिति वाच्यम् । वैद्योऽविद्यायेति वक्ष्यमाणवचनविरोधात् । आदाहिकं जामातृतया यशुरादितो कथञ्चत्तस्यैवेत्येवकारात् न्यूनविद्याविद्यव्यवच्छेदः माधुपर्कि कर्मात्स्वित्तस्यैव भाव्याधनस्य स्त्रीधनत्वादिभागाप्रसङ्गेन तथा व्याचष्टे । भार्याप्राप्तिकाल इति । यतः श्रार्य्यभार्याधने विद्या धनमसादलभधनञ्च एतान्यभिभाष्यानि अतएतानि हित्वा अन्यदिभजेदिति वचनार्थश्च श्रियति । एतानीति । अन्यदिभजेदिति वचने नास्ति कुतोविवृतमतउक्तं अनुवर्त्तत इति । अथ तोमुखः ॥०॥

विभृयादित्येकवचननिर्देशाद्यदि विद्यामभ्यस्य तोभ्रातुः कुटुम्बमपरोभ्राता स्वधनव्ययशरीराया श्राभ्यां सम्बर्द्धयति तदा तद्विद्योपार्जितधने तस्याप्यधिकारः ।

तथा वैद्योऽविद्याय नाकामोदद्यादंशं स्वतो धनात् । पितृयं द्रव्यं समाश्रित्य न चेत्तेन तदर्जितम् । पितृयपदं साधारणधनपरम् । तदनाश्रित्यार्जितम् । वैद्योऽविद्यायानिच्छन्नदद्यात् ।

वैद्याय विदुषे पुनः साधारणमन्तरेणाप्यर्जितं
न दद्यादेव ।

तथा गौतमः ॥ स्वयमर्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं
न दद्यात् । असाधारणधनशरीरव्यापारार्जितं
स्वयमर्जितमविद्वज्ज्ञो दातुमनिच्छन् न दद्यात्
विद्वज्ज्ञः पुनर्दद्यादेव । एतच्च विद्याधनमात्रविष-
यम् ।

तदाह कात्यायनः ॥ नाविद्यानान्तु वैद्येन
देयं विद्याधनात् क्वचित् । समविद्याधिकानान्तु
देयं वैद्येन तद्वनम् । तन्लोच्चरितविद्यापदमुभाभ्यां
समाधिकपदाभ्यां सम्बध्यते तेन समविद्याधिक
विद्याधिकानां दातव्यम् । न्यूनविद्याऽविद्ययोः पुनर-
नधिकारः ॥ ० ॥

विभृयादित्येकेति । इतरनैरपेक्ष्येण भरणकर्तृत्वस्य एक
वचनबलसम्भवादिति भावः । इतरनैरपेक्ष्यस्य साधारण
धननैरपेक्ष्यं तद्भातुरसाधारणनैरपेक्ष्यस्य तेनाश्रुताभ्यां
दाभ्यां त्रिभिर्वा भरणे सर्वेषामेव तेषामंशितेति । समाश्रित्येति
एतच्च भोजनाच्छादनातिरिक्तधनाश्रयणपरकमर्थन्वनो
पधातस्य गृहस्थितेनाप्यवगच्छकर्तव्यत्वात् । साधारणधनपर

मिति । अन्यथा पितामहादिधनोपघाते विभागानुपपत्तेरिति भावः । अवैद्यायेति विशेषणस्वरसलभार्थमाह । वैद्यायेति । एतस्मैव विवरणम् । विदुषे इति । एतच्च स्वयमर्जितञ्च विद्याधनमात्रेति । तदतिरिक्तस्वयमर्जितस्य तु विद्वद्भावा विद्वद्भावा अदेयत्वादिति भावः । तन्मोक्षरितमिति । सक्तदुष्करितमित्यर्थः । उभाभ्यामिति । समविद्येत्यत्र विद्ययैव साम्यावगतेरधिकेत्यत्रापि विद्ययैवाधिक्यमवसीयते । नतु धर्मान्तरेण अनुषङ्गापेक्षया अध्याहारस्य कल्पने गौरवादिति भावः ॥ ० ॥

तदेवमादिवचनैर्विद्याशौर्यादिधनेष्वपि साधारणधनोपघातानुपघाताभ्यां विभागाविभागयोरवगमात्तस्यैव प्रयोजकत्वात्तत्पदवत्येव श्रुतिः कल्पनीया । उपघातार्जितं विभजेदिति । न पुनः शौर्यादिपदवत्यपि । अवग्यकल्पनीयसामान्यश्रुतिकल्पनयैवोपपत्तेः । होलाकाधिकरणन्यायस्यायमेव विषयः । यदा न्यायप्राप्तएवायमर्थोऽयमेव नार्जितस्तस्मिन् जीवति तस्यैवासति विशेषवचने । यत्र पुनः साधारणधनमात्रेणैकस्य व्यापारोऽपरस्य धनशरीराभ्यान्तत्रैकस्यैकोभागोऽपरस्य

भागद्वयं न्यायावगतमेव निबद्धम् । एतेन चैतदपि
सिध्यति । यत्साधारणधनोपघाते सति यस्य यावतोऽ
शस्य स्वल्पस्य महतोवोपघातः तस्य तदनुसारेण
भागकल्पना कार्य्या ॥ ० ॥

तस्यैवोपघातानुपघातार्जितत्वस्यैव प्रायेजकत्वात् । विभागे
उपघातार्जितत्वस्याविभागे चानुपघातार्जितत्वस्य प्रयोजक
त्वात् । कल्पनीयां श्रुतिमाह । उपघातार्जितमिति अनुप
घातार्जितं न विभजेदिति तु श्रुतिर्न कल्प्यते । तत्रान्येषां स्वामि
त्वाभावेन विभागाप्रसक्तेः तदभावस्य सिद्धत्वात् । सामान्य
श्रुतीति । श्रौत्यादिपदशून्याक्तश्रुतिकल्पनयेत्यर्थः । श्रौत्यादि
पदवती उपघातेन श्रौत्यार्जितं विभजेदित्येवं रूपश्रुतिकल्पने
गौरवात् । न्यायमूलत्वमाह । यदेति । धनसाधारण्यं व्यापार
साधारण्यं वा भाग्यन्तरस्य विभागोक्तेरुक्तनियमे व्यभिचारमा
शङ्क्याह । असतीति । तथाचायमुत्सर्ग इति भावः । विशेष
वचनञ्च समविद्याधिकेत्याद्युक्तमेव न्यायस्यात्र उपघातार्जिते
अर्जकस्य द्वित्रित्वाभिधानात् अनुपघातार्जितं तदधिकस्य सर्वस्यैव
ग्रहणं युक्तमित्येवं रूपः । यस्य यावदिति । विभिन्नजातीय
भ्रातृसाधारणधनोपघातार्जितैर्ब्राह्मणीपुत्रस्य चतुर्णामंशानां
अत्रियादीनाञ्च निक्षेपानामुपघातस्तत्र स्वस्वाग्रसमर्थ

स्वमेव तेषामंशकल्पनमित्यर्थः । कात्यायनवचने एकत्र प्रतिवासिन इति युतेरेकत्र वास एव नियामको न साधारण धनार्जितत्वम् । तथाच कथं न्यायमूलत्वमित्याशङ्क्यास्यापि न्यायमूलत्वं व्यवस्थापयति ॥ ० ॥

किञ्च कात्यायनवचनम् विभक्ताः पितृवित्ता
 च्चेदेकत्र प्रतिवासिनः । विभजेयुः पुनर्द्विंशं स लभे
 तोदयोयतः । इदं संख्यस्य साधारणधनोपघाते
 नार्जकस्य भागद्वयं इतरेषामेकैकोभाग इति श्रीक
 रेण व्याख्यातम् । तेनानुपघातार्जितभर्जकस्यैव
 धनम् । संख्यत्वेऽपि न पुनस्तद्वनं साधारणमित्यभि
 प्रायोमुनेर्व्याख्यातुञ्च लक्ष्यते अनुपघातार्जिते
 भागविशेषानभिधानात् । एवञ्चेत्संख्यवद्विभक्त
 स्यापि तथात्वमेव युक्तम् । विभागप्रागभावे तत्प्रध्वं
 सेऽपि एकत्र प्रतिवासस्य चेतोरविशेषात् । साधा
 रणधनोपघातार्जितेऽर्जकस्य भागद्वयमिति ज्ञाप
 नार्थत्वेन वचनस्याप्युपपत्तेः । न केवलं संख्य
 विषयत्वं युक्तम् । दौलाक्तधिकारणस्यात्रैव जागरू
 कत्वात् ॥ ० ॥

भृगुराहेतिशेषः । गृहोपस्करेति । उपस्कारः कटककुण्ड
लहारादि सूर्यादीति केचित् । वाह्यं वलीवर्दादि । गृहादिक
मिभिरिति । गृहादिकर्मशिल्पिभिर्यद्गृहादिशिल्पकरणानि
मित्तशिल्पिरूपभर्त्तादिप्रेरणार्थमित्यर्थः न च स्वयमेवस्त्रिया
गृहादिशिल्पेन यन्मूढं लब्धन्तत्कथं न व्याख्यातमिति वाच्यम् ।
तस्य प्राप्तं शिल्पेभ्यः यदित्तम्योत्या चैव यदन्यतः । भर्त्तुः स्वात्म
भवेत्तत्र शेषन्तु स्त्रीधनं स्मृतमित्यनेन स्त्रीधनत्वनिर्वासात् ।
तत्र भर्त्तुरवाधिकारात् । बन्धुदत्तमिति वचनस्य चप्रकर
णात् स्त्रीधनविषयत्वादिति अन्यथा व्याख्यातम् । भर्त्तादि
प्रेरणार्थमिति । उत्काचः कथं शुल्कमन्यस्यैव शुल्कत्वादत
आह । तदेवेति । व्यासोक्तं वेति । वासमुच्ये । तच्चेति । एतेन
वक्ष्यमाणसुरादिविवाहप्राप्तशुल्कपरत्वभावमस्य सूचित
श्चण्डेशरादिपुरस्कातस्याचीनमतं दूषयति । नपुनरिति ।
आसुरमाचेति । तथाचासुरादोत्यादिना राक्षसपैशाचग्रहण
मसङ्गतमितिभावः । आसुरमाचे शुल्कं नेतरयारित्युक्तार्थे
प्रमाणमाह । यथोक्तमिति । शुल्कमाहचर्यादासुरादिचिपु
यद्वन्धुदत्तादिधनस्तदेव भ्रातृगामीतियत्कश्चिदुक्तस्तदपि
दूषयति ॥ ० ॥

अतोराक्षसादौ शुल्काभावात् शुल्कसाहचर्येणा
सुरादिष्वेव यद्वन्धुनन्तन्मात्रस्य भ्रातृगामित्वाभिधानं

हेयं । तथा च तस्य स्त्रीधनत्वाभावाच्च पित्रादि
गृहीतधनस्य च शुक्लत्वेन कीर्तनात् ।

तथा मनुः । न कन्यायाः पिता विद्वान् गृहीया
च्छुक्लमण्वपि । गृह्णन् हि शुक्लं लोभेन स्यान्नरोऽप
त्यधिक्रयी । पितेत्युपलक्षणम् । तेन भ्रात्रादिरपि
धनं गृह्णन् शुक्लयाही तेन पित्रादिगृहीत परमेव
शुक्लं भवति इत्युक्तं । अतोयदुक्तमासुरएव शुक्ल
रूपस्त्रीधनसम्भवात्तदेकवाक्योपात्तयोर्व्वन्धुदत्ता
न्वाधेययोरप्यासुरविवाहगोचरयोरेव भ्रातुरधि
कार इति निरस्तम् । किन्तूक्तशुक्लस्त्रीधनस्य सर्व्व
विवाहेष्वेव सम्भवात् । सर्व्वत्रैव भ्रात्रधिकारो
वाक्यात् विशेषानवगमात् । तथा गौतमवचनमपि
कात्यायनसमानार्थम् यथा भगिनीशुक्लं सोदर्या
स्त्रीणामूर्ध्वमातुः पूर्वं चैके । अस्यार्थः । प्रथमं सोदर्याणा
न्तेषां पुनरभावे मातुः । पूर्वं चैक इति परम
तम् ॥०॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अत इति । राजसादावित्यादिना पैशाचपरिग्रहः तथा च
तयोः शुक्लाभावात् तस्याश्चर्व्वेण तदुभयसम्बन्धिनस्य
आहगामिताभिधानमशङ्क्यत्वा देवमित्यर्थः अत्रादिपदम्

पश्चाच्च आसुरएवेति वक्तव्यमित्यत आह । तच्चैति । उपलक्षण
मिति कन्यादातृमात्रोपलक्षणमित्यर्थः । शुल्कासाहचर्या
दिति । यदुक्तं । तस्य राक्षसादावादिपदयाह्ये शुल्काभाव
दोषेण हेयतोक्ता अधुना पुनरासुरमात्रोपलक्षणमुदत्तादि
धनं शुल्कासाहचर्यात् भ्रातृगामीति मतं निरस्यति । अतरति
यतः शुल्कं कन्यादातृरेव न कन्याया अत इत्यर्थः । किन्तुतेति ।
ग्रहोपस्करइत्यादिना यदानेतुमित्यादिना चोक्त इत्यर्थः
एषु शुल्कपरिभाषाया अयं तदेव प्रयोजनमप्रयोजनान्तरस्या
दृष्टत्वात् इत्यपि बोध्यम् । वाक्यादिति । सामान्य एव बन्धुदत्त
मित्यादिवाक्यादित्यर्थः । विशेषाश्रवणात् आसुरादिविशेषा
श्रवणात् । कात्यायनसमानार्थमिति । पितृभ्याश्चैव यदत्त
मित्यादिकात्यायनसमानार्थमित्यर्थः । गौतमवचनमाह ।
भगिनीशुल्कमिति । अत्र शुल्कपदेन पारिभाषिकशुल्कस्यैव
ग्रहणं शास्त्रीयपरिभाषाया अन्तरङ्गत्वेन विशेषोपस्थिति
कत्वात् नतु मूल्यरूपस्येति भावः । परमतमिति । सोदरान
न्तरं पितुः तदनन्तरं मातुरिति परमतमित्यर्थः ॥ ० ॥

अतः प्रथमं सोदराणाम् । तदभावे मातुः मातु
रभावे पितुः । एषां पुनरभावे तद्वनमर्त्तुः ।

यथा कात्यायनः ॥ बन्धुदत्तस्तु बन्धूनामभावे
भर्तृगामि तत् । बन्धूनामभावइत्यनेन भ्रातुरभाव
इति सूचितम् । भ्रातुरभावे पितुर्धनाधिकारात् ।
दण्डापूपन्यायात्तत्सिद्धेः । भर्तृपर्यन्ताभावे पुनरि
दमुच्यते ।

यदाह बृहस्पतिः ॥ मातुः स्वसा मातुलानी
पितृव्यस्त्री पितृस्वसा । श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च मातृ
तुल्याः प्रकीर्त्तिताः । यदासामौरसेन स्यात्सुतो
दौहित्र एव वा । तत्सुतो वा धनन्तासां स्वस्त्रीयाद्याः
समाप्नुयुः । औरसपदेन पुत्रकन्ययोरुपादानम् ।
तयोः सर्वापवादकत्वात् । सुतपदेन सपत्नी
पुत्रस्य सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्युचिणी भवेत् ।
सर्वास्ताः स्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुरिति स्मृतेः
नतु सुतपदमौरसविशेषणम् । वैयर्थ्यात् । सपत्नी
पुत्रसङ्गावेऽपि स्वस्त्रीयाद्यधिकारापत्तेश्च । औरसं
पुत्रकन्ययोः सपत्नीपुत्रस्य चाभावे दौहित्रस्याधि
कारिता ॥ तत्सुतइति तच्छब्देन पुत्रसपत्नीपुत्रयो
रुपादानम् । तेन तत्पुत्रयोरधिकारो न तु दौहित्र
इत्यपि । तस्य पिण्डदाने वद्धिर्भावात् ॥ ० ॥

समतमुपचंहरति । अतः प्रथममिति । तेषां भ्रातृमातृ
पितृशालन्बुद्धत्वं मातापितृदत्तम् । भ्रातुरभावइति ।
भ्रातुरभावएव पित्रोरधिकारात्तयोरभावे भर्त्तृधिकारे
प्रतिपादिते भ्रात्रभावे तदधिकारस्य दण्डापूपन्यायात्सिद्धत्वा
दिति भावः । औरसपदेनेति । विशेषणीभूतलिङ्गपरित्यागे
हेतुमाह । तथोरिति । तथाच लिङ्गस्य विवक्षणे पुत्रानन्तर
कन्याधिकारविधिविरोधः स्यादिति भावः । एतच्च दत्तिमा
देरप्युपलक्षणम् । सपत्नीपुत्रस्येति । तद्भगिन्याऽपीति बोध्यम्
पुंस्त्वस्याविवक्षितत्वात्तस्य अपि स्वपुत्रदारेण भर्त्तादिपुरुषत्रय
पिण्डदातृत्वादिति । सपत्नीपुत्रस्याभावे दौहित्रस्याधिकारि
तेति ॥०॥

तदेषां पुत्रादीनां भ्रात्रादिभर्त्तृपर्यन्तानाञ्चां
भावे सत्त्वपि श्वशुरभ्रातृश्वशुरादिषु सपिण्डेषु
भगिनीपुत्रादीनामधिकारिता । अनन्यगतेर्वच
नात् । स्त्रीणां मातृतुल्यत्वप्रतिपादनेनामीषां
पुत्रतुल्यत्वज्ञापनेन पिण्डदातृत्वसूचनस्य दाय
प्रकरणे घनाधिकारज्ञापनैकप्रयोजनत्वात् । तच्च
स्वस्त्रीयाद्यादितिवचनात् । भगिनीसुतस्वभर्त्तृ
भगिनेयदेवरपुत्रभ्रातृश्वशुरपुत्रभ्रातृसुतजामातृ

देवराणामूर्ध्वपूर्वस्थाभावेऽपरस्याधिकारे देवर
स्यैव सर्वशेषेऽधिकारापत्तेर्महाजनविरोध इति ।
वस्तुबलमालम्ब्यवचनं वर्ण्यते ॥ ० ॥

अयुक्तमेतत् दौहित्रस्योपदिष्टप्रजात्वेन स्वभोग्यमर्हपिण्ड-
दातृत्वेन च प्रागधिकारस्यैवाचितत्वात् । बन्ध्याविधवादुहि-
तृसत्त्वेऽपि प्राग्दौहित्राधिकारस्योक्तत्वात् । अत्र पत्नीदुहितर-
इत्यत्र वक्तव्यवचनात् । दुहितुरभावे दौहित्रस्याधिकार-
इति स्वेकविरोधाच्च तस्मात्सपत्नीपुत्रबन्ध्याविधवादुहितृणा-
म्रागेव युक्तोदौहित्राधिकार इति बोध्यम् । अतएव तत्सुत-
इत्यत्रापि पाठक्रमेण याज्ञः पात्रस्य बन्ध्यादिदुहितृसपत्नी-
पुत्रदौहित्रेभ्योऽयौक्तुर्धने प्रागधिकारस्योक्तत्वात् । नच दौहित्र-
एवेत्यत्र एववाशब्दाभ्यां जघन्यत्वावगमात् । वाचनिक एव
सपत्नीपुत्रानन्तरं दौहित्राधिकार इति वाच्यम् । औरसपुत्रस्य
सपत्नीपुत्रपरतायामेव स्थात्वेन बलसिद्धाप्रमाणाभावात् । नचैवं
सपत्नीपुत्रसत्त्वं पि भगिनीपुत्रस्याधिकारः स्यादिति चेद्दे-
तमग्न्ये पित्राद्युपादानाभावात् । तत्सत्त्वेऽपि तर्हि किञ्च स्यात् ।
अथ भर्तृपितृभ्रातृधिकारानन्तरं संहितायां लिखनान्तेषाम-
भाव एवेषामधिकार इति चेत्तर्हि पुत्राद्यनन्तरस्यापि सुतरां
प्राप्तेरनर्थकमेवौरसाद्युपादानन्यादौरसादिपदं पूर्वं पूर्वा

धिकारिमात्रोपलक्षणमेवामधिकारक्रमश्च वचनान्तरेणैव
प्राप्तास्त्वाद्यान्य तेषामनन्तराग्निनीपुत्रादीनामधिकारमात्र
बोधकं बृहस्पतिवचनमिति रहस्यम् । भर्तृपर्यन्तानामभाव
इत्यादिनोक्तमुपसंहरति । तदेषामिति । दौहित्रान्तश्च
लायां अशुरभ्रातृश्च शूरादेरगणनात् तेषु सत्सु द्यूतम् ।
वस्तुबलमिति । उपकारकत्वरूपं वस्तुबलमित्यर्थः । उक्तवस्तु
बलस्य धनहरणप्रयोजकत्वे मानमाह ॥०॥

तत्र मन्त्रा । त्रयाणामुदकं कार्यन्त्रिषु पिण्डः
प्रवर्त्तत इति दायभागप्रकरणे कीर्त्तनात् ।

याज्ञवल्क्येनापि पिण्डदोशहरश्चैवामिति पिण्ड
दानेनाधिकारदर्शनात् । पुत्रस्यापि सातिशय
पिण्डदानेन नरकत्राणकारणतया मुख्यभावेना
धिकारावगतेः ।

मातुर्लोभाग्निनेयस्य स्वस्वीयोमातुलस्य च ।
अशुरस्य गुरोश्चैव सख्युर्मातामहस्य च । एतेषां
चैवभार्याभ्यः स्वसुर्मातुः पितुस्तथा । आद्वदानन्तु
कर्त्तव्यमिति वेदविदां स्थितिरिति बृहद्वातामप
वचनादमीषां पिण्डदत्त्वप्रतिपादनादयं पिण्डदान
विशेषादधिकारक्रमः । तत्र प्रथमन्देवरस्तपिण्ड

तद्गर्हपिण्डतद्गर्हदेयपूर्वपुरुषत्रयपिण्डदातृत्वात्
 पिण्डत्वाच्च तद्धनेऽधिक्रियते ॥ तदभावे भ्रातृश्च
 श्वरदेवरयोः सुतस्तत्पिण्डतद्गर्हपिण्डतद्गर्हदेय
 पूर्वपुरुषत्रयपिण्डदातृत्वात् सपिण्डत्वाच्च पितृ
 व्यस्तीधनेऽधिकारी तदभावे त्वसपिण्डोऽपि भगिने
 पुत्रः तत्पिण्डतत्पुत्रदेयतत्पित्रादिपिण्डत्रयदा
 नात्मातृस्वधनेऽधिकारी । तदभावे स्वभर्तृभागि
 नेयः पुत्रात् भर्तुर्दुर्वलत्वात् । तत्स्थानपातिनो
 रपि तथैव बलाबलस्य न्याय्यत्वात् । तद्गर्हदेयपूर्व
 पुरुषत्रयपिण्डदानात्तत्पिण्डदानात्तद्गर्हपिण्डदा
 नाच्च मातुलानीधनेऽधिकारी । तदभावे भ्रातृ
 सुतस्तत्पितृपितामहयोस्तस्याश्च पिण्डदानात्पितृ
 स्वधनेऽधिकारी । तस्याप्यभावे श्वशुरयोः पिण्ड
 दानाज्जामाताश्च श्रूधनेऽधिकारी ॥ ० ॥

त्रयाणामिति । अधिक्रियते अधिकारी भवति । ननु स
 स्त्रीयः पित्रादित्रयपिण्डदाता भर्तृभागिनेयश्च श्वशुरादि
 चयपिण्डदाता तथाच तत्पिण्डदातृत्वे कथमर्हभागिने
 यस्तत्स्त्रीयवाच्यतादित्यत्राह । पुत्रादिति । पुत्रत्वा
 तिदेवेन पुत्रदेयपिण्डत्रयदातृत्वेन च स्त्रीयस्तत्पुत्रस्ये

पातिताभर्हर्देयपिण्डवचदातृत्वेन भर्हभागिनेयस्य भर्हस्ये
पातितेत्यर्थः । तथाच न्यायबलेनैव भर्हभागिनेयस्य स्वस्तीय
बाध्यतेतिभावः ॥ ० ॥

अयं क्रमोऽग्राह्यः स्वस्तीयाद्यादिति न क्रमार्थः ।
किन्त्वधिकारिमात्रज्ञापनार्थपरम् । षष्ठांपुनरेते
पामभावे श्वशुरभ्रातृश्वशुरादेः सपिण्डानन्तर्यं
कृतोपनाधिकारो बोद्धव्यः । नच सपिण्डाभावे
सतीदं वचनमिति वाच्यम् । अस्यामधिकारिशृङ्ख
लायान्देवरदेवरसुतयोर्भ्रातृश्वशुरसुतस्य चाधि
कारज्ञापनात् । आसन्नतरश्वशुरादेः परि
त्यागादतोवचनार्थापरिज्ञानकृतो व्यवहारः प्रमा
णपरतन्त्रैरतन्त्रिकर्तव्य इत्यति गहनमुक्तमप्रजा
स्तीधनम् ॥ ० ॥

वचनार्थापरिज्ञानेति । उक्तमनुयाजवल्क्यवचनयोस्ता
त्यर्थार्थापरिज्ञानकृत इत्यर्थः व्यवहारः स्वस्तीयाद्यादिति
पाठक्रमेणाधिकारव्यवहारः प्रमाणपरतन्त्रैः प्रमाणैकवा
पेक्षैः अतन्त्रमप्रयोजकमप्रमाणमिति यावत् । अत्रायं स्तीधना
धिकारकमनिर्णयस्तत्र कन्याधने प्रथमं सोदरभ्रातृसदभावे

मातृसदभावे पितुरधिकारः वरदत्तातिरिक्तवाग्दत्ताधने
 स्वर्गवरदत्तधने तु वरस्याधिकार इति ऊढायायैतकधने
 प्रथमं कुमारी तदभावे वाग्दत्ताऽधिकारिणी एतयोरभावे
 ऊढयोः पुत्रवतीसम्भावितपुत्रयोर्युगपदधिकारः । एकस्या
 भावेऽपत्यैः एतयोरभावे बन्ध्याविधवयोस्तुत्याधिकारः
 हकाभावे सापरायाः ततः पुत्रदौहित्रपौत्रप्रपौत्रसपत्नी
 पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां क्रमेणाधिकारः अन्यैक्ये सपत्नीपुत्रान
 न्तरन्दौहित्रस्याधिकार इति विवेक्षितो ब्राह्मादिविवाहपञ्च
 कसमयलभ्यैतकधने भर्ता भ्राता माता पिता चेतिक्रमः
 आसुरादिविवाहत्रयसमयलभ्यैतके माता पिता भ्राता
 भर्ता चेतिक्रमः ततो देवरः ततो देवरपुत्रभ्रातृश्वशुरपुत्रौ
 ततो भगिनोऽपुत्रः ततो भर्तृ भागिनेयः ततो भ्रातृपुत्रः ततो
 जामाता ततः श्वशुरः ततो भ्रातृश्वशुरः ततश्चानन्तर्य
 क्रमेण सपिण्डाः ततः सकुल्याः ततः समानोदका इति यैतका
 तिरिक्तेऽपि पितृदत्ते प्रथमं कुमारी ततः पुत्रः ततः पुत्रवती
 सम्भावितपुत्रे ततो दौहित्रपौत्रप्रपौत्रसपत्नीपुत्रपौत्रप्रपौत्राः
 ततो बन्ध्याविधवा च युगपदधिकारिण्यौ ततो ब्राह्मादिक्रमं एव
 पूर्ववत्क्रमः पितृदत्तातिरिक्तेऽयैतकधने तु पुत्रकुमार्योर्यु
 गपदधिकारः तयोरभावे पुत्रवतीसम्भावितपुत्रयोः ततः
 पौत्रदौहित्रप्रपौत्रसपत्नीपुत्रपौत्रप्रपौत्राः क्रमेणाधिकारिणः

ततोऽवस्थाविधया च युगपदधिकारिणो ततः पूर्ववत्
भाषादिकमदति ॥ ० ॥

सम्प्रति विभागानधिकारिणः कथ्यन्ते । तत्पर्यु
दासेनाधिकारिणापनार्थं ।

तत्रापस्तम्बः सर्वे हि ^{धर्मयुक्त} भागिनाद्रव्यमर्हन्ति ।
यस्त्वधर्मेण द्रव्याणि प्रतिपादयति ज्येष्ठोऽपि तम
भागं कुर्वीत । इदम्बालकेनाकुलीकृत्य पठितम् ।
यस्तु धर्मेण द्रव्याणि प्रतिपादयति ज्येष्ठस्तस्मिन्
समभागं कुर्वीतेति तदनाकरम् । तथाऽपि
पात्रितस्य रिक्थपिण्डोदकानि निवर्त्तन्ते । अथ
पात्रितोभिर्ज्ञोदकोक्तः ।

तथावृद्धस्थितिः ॥ सवर्णाजोप्यगुणवात्सर्हः
स्यात्यैतृके धने । तत्पिण्डदाः श्रोत्रिया ये तेषां तद
भिधीयते । उत्तमर्णाधमर्णेभ्यः पितरं त्रायते सुतः ।
अतस्तद्विपरीतेन नास्ति तेन प्रयोजनम् । तथा
गवा किं क्रियते या न धेनुर्न गर्भिणी । कोर्यः
पुत्रेण जातेन योन विदासधार्मिकः । शास्त्रशौर्यार्थं
रक्षितस्तपोविज्ञानवर्जितः आचारहीनः पुत्रस्तु

मूत्रोच्छारसमस्तु सः ^{अथ मन्त्रः} आपस्तम्बः) पित्रादेरौ
 देशिकस्य कर्मणोऽसंस्कृतः सुतः श्रेष्ठान् परोवेद
 पारग इति पुत्रास्त्रानरकाश्चायतदत्यादिवचनेन
 पुत्रकर्तृकतया महाफलश्रुतेस्तत्कर्मवेतनं धन
 सम्बन्धित्वं अतस्तदकुर्वतः कुतो वेतनं ॥०॥

अथ दायभागो निरूपणीय इति प्रतिज्ञायामनधिकारि
 निरूपणमप्रस्तुतमतश्चाह । तत्पर्युदासेनेति । तथाच
 तद्विज्ञाधिकारिकतया दायभागनिरूपणे तदपि प्रकृतमेवे
 तिभावः । ज्येष्ठोऽपीति । प्रतिपादयतीत्यनेनाश्वयः बाखेन
 तज्ज्ञाया निबन्धकारेणेत्यर्थः । भिक्षोदकीकृत इति । पाति
 त्यादिदोषेण येन सहैकमुदकं न शीयते व्यवहारानर्ह इति
 यावत् । उक्तमर्थाधमर्षेभ्य इति । धर्मपरोचकिर्द्द्वै उक्तमाना
 न्दैव पितृणां अधमाना ह्येतादौ नाष्टमवस्थापाकरणीयत्वेन
 अष्टतुल्यत्वेभ्य इत्यर्थः । वज्रवचनम् व्यक्तिभेदान् । असंस्कृतो
 ऽनुपजीतः महाफलश्रुतेरित्यनन्तरं महानिष्टनिवारणश्रुते
 रेत्यपि बोध्यन्तेनाक्तपुत्रा मनरकनाशस्य पुत्रकर्तृताभावेऽपि
 न क्षतिः ॥०॥

अतएवाह मनुः सर्व्व एव विकर्मस्थानार्हन्ति
 आतरोधनम् । तथा अनश्वौ जीवपतितौ जात्यन्ध

आपु सुमारीमाधिकारावसमाप । तत्तुल्यकाराभावे
न्यायविरोधात् । सामान्येन प्राप्तिर्याज्ञवल्क्यवचनादपी
त्याह ॥ ० ॥

तथा याज्ञवल्क्यः अप्रजास्तीधनमर्तुर्ब्राह्मादिषु
चतुर्थ्यपि । दुहितृणाम्प्रकृताचेच्छेषेषु पितृगामि
तत् । ब्राह्मादिषु विवाहेषु यस्तन्मध्यस्थिधनं स्त्रिया
तत्तस्यां सृतायामयमं दुहितृणामेव तत्रापि प्रथमं
कन्यायास्तदभावे प्रत्तायास्तदभावे परिणीतायाः
सर्वदुहितृभावे च पुत्रस्याधिकारः । अप्रजः
स्तीधने भर्तुरधिकारात् । वृद्धस्यतिना त्वप्रत्तापदे
नाप्रत्ताद्यभावे समूढाया अप्यधिकारः कश्चितः ॥ ० ॥

तथेति । ब्राह्मादिषु चतुर्षु ब्राह्मणे सह पञ्चसु विवाहेषु
मर्तुः शेषेषु आसुरादिषु पितृगामि प्रकृताचेत्तदा दुहितृणां
मर्यात् सर्व्वचेत्यर्थः । प्रथमं कन्यायारति पूर्व्वोक्तवचनैकमूला
त्वादिति भावः । नचात्र दुहितृपदं दोहितृपरं अन्यथा
मातुर्दुहितरः शेषमित्यनेन पौनरुक्त्यापत्तेरिति मिताक्षरेण
शुक्रमितिवाच्यम् । मातुर्दुहितरद्वयसाध्यविवक्षणेनोप
संहारकतया तदतिरिक्तपरिचयमस्यविवक्षतया च तस्मात्

पुनरुक्तत्वात् । तस्य च अथावशिष्टरूपविशेषानन्तरमन्यका
धिकाराय च सार्थकत्वात् । तदपनं कन्याधिकारार्थमिदं न
समूहाधिकारार्थमित्यपुनरुक्तिरिति केचित् तदसत् । उभय
चैव दुहितृपदमात्रश्रुतेरविशेषादुभयाधिकारस्यैकेनैव सिद्धे
रपरवचनवैयर्थ्यस्य दुःपरिहरत्वात् । दुहितृशामवेति । ननु
यौतकधनवत् पुत्रदुहितोरित्यर्थः । मनुवचनबलात् दुहि
त्रभावएव भर्तुरधिकारप्राप्तेः कथमेतत्पुत्रस्याधिका
रित्यत आह अप्रजास्त्रीधनमिति । ननु गौतमवचनात् यौत
कधने समूहापर्यन्तानां दुहितृशामधिकारोऽस्तु । अयौतके
तु । स्त्रीधनमन्यदपत्यानां दुहिता च तदंशिनी । अप्रज्जाचेत्स
मूहा तु न लभेन्मातृकन्धनमिति वृहस्पत्यैर्न समूहानां
आचादिसत्त्वेऽधिकारः स्यादित्याशङ्क्यानां दशनस्यैवार्थ
विवेचनेन तत्र समूहाधिकारे प्रमाणमाह । वृहस्पतिनेति
अप्रज्जापदेनेति । आचाद्यभावः । अप्रज्जापदश्च दुहितृपरं
समूहानिवर्धनेनैव दुहितुरप्रज्जात्वलाभात् किन्तु । अप्रज्जाचे
दद्यादस्ति तदा समूहा न लभेदित्येवार्थः । तथाचाप्रज्जाभावे
समूहाधिकारे वृहस्पतिना प्रतिपादितइति । अप्रज्जाया
दुहितुरधिकारितायां पुत्रसमत्वात् अप्रज्जाभावे प्रतिपादिते
अर्थात्पुत्राभावोऽपि प्रतिपादितइत्येतदुक्तम् अप्रज्जाय
भावइति । ब्राह्मणदिविवाहेन भार्यात्वं प्रज्जायावावहुन
गोचरमेव वचनमिति मिताशरीरकमपाकर्तुमाशङ्कते ॥ ० ॥

नच यौतकमाचधनाभिप्रायेण नेदं वचनम्
किन्तु । ब्राह्मादिविवाहेन विवाहितायायद्यावद्धनं
यौतकमयौतकं वा तदभिप्रायेणेति वाच्यम् । बन्धु
दत्तमिति वचनस्य निर्विषयतापत्तेः मनुविरो
धाच्च यदाहमनुः ब्राह्मादैवार्यगान्धर्वप्राजापत्येषु
यद्धनम् । अप्रजायामतीतायाम्मर्तुरेव तदिष्यते ।
यत्त्वस्याः स्याद्धनन्दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु । अती
तायामप्रजायां मातापित्रोस्तदिष्यते । अस्याः स्याद्
त्तमिति पराचीनं पूर्वत्रानुषज्यते । तेन विवाहेषु
यद्धनन्दत्तमिति सम्बन्धाद्वैवाहिकधनमात्रप्रतीते
र्नयावद्धनविषयत्वं ।

तथा यमः । आसुरादिषु यद्व्यं विवाहेषु
प्रदीयते विवाहक्रियायामपूर्वापरौभूतायां यद्व्य
मदीयतइति यौतकधनमात्रगोचरत्वमेव प्रती
यते । नच विवाहात्पूर्वापरतोवास्तिया सम्बन्धा
प्रज्ञास्त्रीधनस्य गतेरश्रूयमाणत्वात् । ब्राह्मादि
पदं स्त्रीधनपरमिति वाच्यम् । पूर्वापरसम्बन्धस्य
स्त्रीधनस्य विस्तरेण गतेर्वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ० ॥

नयेति । नेदं वचनमिति । अप्रजास्तीधनभर्तुरिति याज्ञ
 वल्क्यवचनमित्यर्थः । अनुदत्तमिति वचनस्येति । अनुदत्तं
 तथा गृह्यसम्पन्नाधेयकमेव च । अप्रजायामतीतायां बान्ध
 वास्तदवाप्नुयुरिति वक्ष्यमाणबान्धवपदोपात्तभाषाधिकार
 बोधकवचनस्येत्यर्थः । निर्विषयतेवेति । तथाप्यनेन वचनेन
 भवन्मते भाषाधिकारविद्धेरित्याशयः । अथ तद्विरोधादस्यो
 त्तरगवचनस्य अनुदत्तगृह्योत्तरविवाहपूर्वसमयसम्बन्धविवाहो
 त्तरपुत्रादिदत्तविषयत्वमस्त्वित्यत आह । मनुविरोधाच्चेति ।
 अनुषज्यत इति । ननु प्राजापत्येषु इत्यनन्तरभार्यात्वप्राप्ता
 यादृत्याहारोऽनुषङ्गापेक्षया तस्य गृहत्वादिति भावः ।
 एवं चैतदेकवाक्यतया याज्ञवल्क्यवचनेऽपि दत्तमित्यसौवाधा
 हारोऽयुक्तो न तु भार्यात्वं प्राप्तायादृत्यस्येति भावः । न चावद्व
 धनविषयत्वमिति । यौतकेतरधनेभर्तृसत्वेऽपि पित्राधिकार
 स्य वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । विवाहक्रियायामिति । पूर्व्यापरी
 भूतायां वृद्धिआह्वावधिसप्तपदो गमनपर्यन्तमित्यर्थः । यौत
 कायौतकप्रजस्तीधनाधिकारिणो निरूप्याप्रजस्तीधनाधिका
 रिणो विवचुः प्रतिजानीते ॥ ० ॥

सम्पति अप्रजास्तीधनाधिकारिणः कथ्यन्ते ।

अप्रजास्तीधनभर्तुर्माह्वादिषु चतुर्थ्यपि । माह्वा

आदिर्येषाञ्चतुर्णां ते दैवार्थप्राजापत्यगान्धर्वस्य
त्वारोऽग्नौषसश्च पञ्चभवन्ति । ब्राह्मणं दैवार्थगान्धर्वं
प्राजापत्येऽपि मनुना पञ्चानामुक्तत्वात् । तेषु
विवाहेषु वर्त्तमानेषु यद्वनं स्त्रिया लब्धन्तदप्रजा
यामतीतायां भर्तुरेव भवतीति । प्रजा सन्ततिः ।
न पुनर्ब्राह्मणादिना परिणीतायायत् यावद्वनं विवा
हात्पूर्वं परतो वा तया लब्धन्तत्सर्वं भर्तुरिति
व्याख्यानं युक्तम् । ब्राह्मणादिष्विति कालार्थत्वाच्च
निर्देशस्य ब्राह्मणादिपदानां स्त्रीपरत्वे एकत्वेन षष्ठ्या च
निर्देशः स्यात् । यत्त्वस्याः स्यादिति स्त्रिया एकत्वेन
षष्ठ्या च निर्दिष्टत्वात् । विवाहकाललक्षणायाञ्च
वर्त्तमानसम्बन्धेन लक्षणा स्यात् ॥ ० ॥

संप्रतीति । ब्राह्मणस्येति । अतद्गुणसम्बन्धानवङ्गमी
हिणा देवादयस्तारोऽधिकारसमुचितेन ब्राह्मणे स ह पञ्चे
त्यर्थः । उक्तार्थकल्पने हेतुमाह । ब्राह्मेति । तथा च मन्वेकमूल
त्मानुरोधादतद्गुणसम्बन्धानवङ्गमीह्यात्रयमिति भावः ।
न पुनरित्यादि । उक्तस्यापि युक्तमन्तराभिधानाय पुनः
स्त्रीर्त्तनन्तदेवाह । कालार्थत्वादिति । निर्देशस्य ब्राह्मणादि
प्रदस्य कालार्थत्वात् विवाहस्य दानाधिकारसम्बन्धेन ब्राह्मणं

द्विकारबोधकत्वात् । गोषु दुष्प्रमानास्मान्तइत्यादौ सति
 वृत्तमीक्षाने दुष्प्रमानादीनामानमनक्रियासम्बन्धेन दोषना
 दिक्रियाकाललक्षणाया निरुद्धत्वादिति भावः । ननु ब्राह्म्यादि
 पदानां स्त्रीष्वेव कुतोऽन लक्षणा स्यादत्राह । ब्राह्म्यादिपदाना
 मिति । स्त्रीपरत्वे ब्राह्म्यादिविवाहेन विवाहितस्त्रीपरत्वे । एकत्वे
 नेति । ब्राह्म्यादिपदं यदि स्त्रीपरं तदा अस्यादिति उत्तर
 वचनस्येन सामानाधिकरण्यानुरोधात् एकत्वेन वक्ष्या च
 निर्देशः स्यादिति भावः । दूषणान्तरमाह । विवाहकाल
 लक्षणमिति । वर्त्तमानसम्बन्धेनेति । वर्त्तमानः कालस्तत्र
 विवाहस्य यः सम्बन्धाधिकरणत्वं तद्रूपेण लक्षणा स्यादि
 त्यर्थः ॥ ० ॥

स्त्रीपरत्वे चातिक्रान्तविवाहक्रियासम्बन्धेन
 लक्षणा जघन्या । साचायुक्ता । नच विवाहित
 स्त्रीवाचकत्वं ब्राह्म्यादिपदानान्तत्तल्लक्षणविवाह
 परत्वेन मन्वादिभिर्निर्दिष्टत्वात्तदाह ।

मनुः । अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत
 इत्युपक्रम्य । ब्राह्म्योदैवस्तथैवार्थः प्राजापत्यस्तथा
 सुरइत्यादि । तथा नारदः । अष्टौ विवाहावर्णानां
 संस्कारार्थमकीर्त्तिताः । ब्राह्मणु प्रथमस्तेषा
 मित्यादि ।

तथा विष्णुः । अष्टौ विवाहाभवन्ति । ब्राह्मोदैव
इत्यादि । अतोविवाहकाललब्धस्त्रीधनविषय
ब्राह्मादिवचनमिति विश्वरूपोक्तमादरणीयं ।
आसुरादिविवाहसमयलब्धन्तु स्त्रीधनं जीवत्यपि
भर्त्तरि माता गृह्णीयात्तदभावे पिता । मातापि
त्रोस्तदिष्यतइत्यत्र क्रमावगतेः । युगपदधिकारे
पित्रोरित्येवाभिदध्यात् ॥ ० ॥

अतिक्रान्तेति । अतिक्रान्ता या विवाहक्रिया तत्सम्बन्धेन
तज्जन्यसंस्कारवत्त्वरूपेण । जघन्येति । विवाहाधिकरणका
लत्वापेक्षया तज्जन्यसंस्कारवत्त्वस्य लक्ष्यतावच्छेदकस्य गुरु
त्वादिति भावः । उपलक्षणं चेत्तत् । कालपरत्वे लक्षणा
निवृद्धा स्त्रीपरत्वे पुनराधुनिकी लक्षणा तासु तदुक्तस्य तद्वा
नस्य साधारत्ववाधोपोति द्रष्टव्यः । केचित्तु अतिक्रान्तेति
अतीतइत्यर्थः । अतीतत्वं हि वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगित्वं तथाच
वर्त्तमानकाललक्षणापेक्षयाऽतीतविवाहक्रियासम्बन्धेन लक्ष
णायां ध्वंसप्रतियोगित्वरूपाधिकपदार्थप्रवेष्टेन गौरवादिति
भावइत्याहुः । ब्राह्मादिपदानां स्त्रीषु लक्षणामसहमाने
त्याह । नचेति । स्त्रीवाचकत्वमिति । दारादिपदवन्नियत
पुल्लिङ्गत्वमेषामित्याशयः । माता गृह्णीयादिति । एवञ्च श्रेष्वेव

पितृगामि तदिति याज्ञवल्क्यवचने पितृकृतविशेषो द्रष्टव्यः
 यद्यपि धनसम्बन्धस्य प्रत्येकपरिसमाप्तत्वेन साहित्यसम्भवेऽपि
 पाणिभ्यान्तृपसङ्गोद्धेत्यादाविव दन्दवक्तात् सहत्वप्रतीतौ युग
 पङ्क्ताधिकार एव प्रतीयते । तथापि । पित्रोरित्यनेनापि
 तथार्थसिद्धेरर्मातापित्रोरित्यत् क्रमाभिधानन्मातुरभावे
 पितुरिति क्रमिकार्थमेवेत्याह । युगपदिति । पित्रोरिति ।
 बहुदुश्चरितपितृपदस्य जनकत्वेन लक्षणया युगपदुभयो
 रपस्थितिसम्भवादिति भावः ॥ ० ॥

कन्याधने च मातुरभावे पितुरधिकारश्च
 ज्ञात् । अत्रापि तथात्वस्यैवोचितत्वात् । तथा
 बौधायनः । ॥ रिक्तं मृतायाः कन्यायागृह्णीयुः
 सोदराः स्वयम् । तदभावे भवेन्मातुस्तदभावे भवे
 त्पितुः । तदनेन कन्याधनं व्याख्यातम् । नच
 कन्याधनइवात्रापि प्रथमं भ्रात्रधिकारः स्यादिति
 वाच्यम् ॥ ० ॥

ननु लङ्कायाश्चमाणाभावाद्वापि प्रातिपदिकपितृ
 पदात् प्रथमजनकत्वस्य पुंस्त्वेनोपस्थितौ पश्चाद्विवचनायनी
 तदित्याशङ्कानुपपत्त्यैवैकमेव कल्पनया मातुरपस्थितिरिति